TEXT FLY
WITHIN THE
BOOK ONLY

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176421
UNIVERSAL LIBRARY

रुबाइयात
उमर ख़य्याम

(सचित्र)

अनुवादक—

श्रीमैथिलीशरण गुप्त

प्रकाशक—

वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न

प्रकाश पुस्तकालय,

कानपुर.

मुद्रक
जाब प्रेस,
कानपुर।
१-१९३१-१.

पुस्तक मिलने के पते—
१—भारती भण्डार, रामघाट, बनारस सिटी
२—साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)
३—प्रकाश पुस्तकालय, चौक, कानपुर

५१

लिखती है, लिखकर बढ़ती ही जाती है उँगली अभ्रान्त,
निस्सन्देह तुम्हारे सारे शुद्धाचार विचार नितान्त,
लुभा सकेंगे उसे अर्द्ध भी वाक्य काटने को न कदापि,
एक वर्ण भी धो न सकेंगे लाख लाख आँसू उद्भ्रान्त।

ओ३म्

अनुवादक का आवेदन

आज अपने सहृदय विचाराधीशों के सम्मुख मैं अपराधी के रूप में उपस्थित होता हूँ। और, बिना किसी किन्तु परन्तु के उनसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ। यदि वे क्षमा कर सकें तो ठीक, नहीं तो जैसा मैंने किया है उसका वैसा फल भोगने के लिए भी मैं प्रस्तुत हूँ।

मुझसे एक धृष्टता हो गई है। जिस बात को न तो मूल में और न उस मूल के भी मूल में स्वयं समझ सकूँ उसे ही दूसरों को सुनाने बैठ जाऊँ, इससे बढ़कर और क्या धृष्टता हो सकती है? निस्सन्देह साहित्य-संसार में यह एक अभूत-पूर्व घटना है!

परन्तु, इस भव में सभी कुछ संभव है।

कहाँ तो फिट्ज़ेराल्ड का वह अंगरेजी अनुवाद, जिसने अपने उस फ़ारसी मूल को भी मूल्यवान् बना दिया है, और कहाँ उसी का यह हिन्दी पद्यानुवाद, जिसका कर्त्ता मूल को पढ़ भी नहीं सकता!

तथापि, इस ओर मुझे मेरा दुर्भाग्य खींच लाया है अथवा सौभाग्य, इसका निर्णय अब भी अवशिष्ट है।

आठ नौ बरस की बात है। मेरे एक बन्धु मेरे अतिथि हुए थे। कुछ दिन रह कर जब वे जाने लगे तब मेरी इच्छा हुई कि कुछ दिन और ठहर जाँय। मेरा अनुरोध तो उन्होंने स्वीकार कर लिया परन्तु सहसा एक यह बन्धन लगा दिया कि मैं उमर खय्याम की रुबाइयों का हिन्दी में पद्यानुवाद कर दूँ। वे जानते थे कि मैं मूल नहीं पढ़ सकता। मैंने विस्मय-पूर्वक कातर होकर निराशभाव से उनकी ओर देखा। उन्होंने भर्त्सना की हँसी हँस कर कहा,—'मैं तुम्हें मूल का अर्थ समझा दूंगा, उससे तुम्हारा काम चल जायगा।'

मैंने बहुत चाहा कि वे मेरे द्वारा अर्थ का अनर्थ न होने दें। किन्तु सम्पन्न और स्वायत्त कुल में उत्पन्न होने और लाड़ प्यार से पलने के प्रसाद-स्वरूप अपना हठ उन्होंने न छोड़ा,—न छोड़ा।

मैं अर्थी था, और अर्थीको निर्वाचन का अधिकार नहीं। फलतः जो मैं चाहता था वह न हुआ और जो नहीं चाहता था वही झख मार कर मुझे करना पड़ा। जैसे तैसे इधर उधर के दस पाँच पद्य लिख कर मैंने उन्हें दे दिये और अतिथि देव सन्तुष्ट होकर चले गये।

कुछ समय बीतने पर जब मैं उनके यहाँ गया और कुछ दिन रहकर आने लगा तब उन्होंने गंभीरता पूर्वक कहा—'खय्याम का काम पूरा कर दो और चले जाओ।'

वाह, यह तो वही बात हुई कि, जब मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगा तब मुझे क्या क्या खिलाओगे और जब तुम मेरे यहाँ आओगे तब क्या क्या लाओगे?

हार फिर भी मेरी ही हुई।

अपनी इस खीझ का बदला लेने के लिए मैं और कुछ नहीं कर सकता तो उनका नाम ही प्रकट किये देता हूँ। वे हैं हिन्दी जगत् के सुपरिचित कला-कोविद राय कृष्णदास जी। आशा है मेरे आलोचक गण उन्हें भी अपने प्रसाद से वंचित न रक्खेंगे।

असल में मेरे मित्र पर इस अंगूरी का गहरा रंग चढ़ा था!

इतना ही नहीं, प्रसिद्ध राष्ट्रीय साप्ताहिक "प्रताप" के "अपरधुर्यपदावलम्बी" प्रिय शिवनारायणजी मिश्र ने "भिषग्रत्न" होकर भी मेरे बन्धु के हठ-जड़ित मस्तिष्क का उपचार न कर उसे इस कार्य के लिए उलटा उत्तेजित कर दिया। बड़े उत्साह से चित्रों के ब्लाक बनवाये और अपने आग्रह के प्रलेप से मेरे अशक्त मस्तक को एक ही दिन में उमर खय्याम का अनुवाद करने में सक्षम बनाने के लिये उतारू हो गये! उनकी आतुरता यहाँ तक बढ़ी कि बीच ही में उन्होंने मेरे अनूदित पद्यों के साथ दो एक चित्र भी अपनी स्मरणीय "प्रभा" में प्रकाशित करा दिये! उन पद्यों पर मेरे कृपालु निरीक्षकों की दृष्टि का पड़ना भी स्वाभाविक ही था। उनमें से एक महाशय ऐसे भी थे जो एक बार इस काम के लिए स्वयं माथापच्ची कर चुके थे। परन्तु अन्त में अनुवादक के तुच्छ पद की अपेक्षा स्वयंभू समालोचक बने रहने में ही उन्होंने अपना गौरव समझा था।

जो हो, मुझे अपने बन्धुओं का अनुरोध रखते ही बना। संभवतः उन्हें अपने ऊपर इतना दृढ विश्वास था कि वे मुझ जैसे अनुपयुक्त जन से भी यह कार्य करा ले जाँयगे। भगवान् उनके आत्म-विश्वास को सफल करे, इसके अतिरिक्त मैं और क्या कह सकता हूँ?

मुझे मित्रों का वह निर्दय विनोद अब सदय आमोद सा प्रतीत होता है। हठ पूर्वक ही सही, उन्होंने मुझे भी पिला ही दी और उसके अंगूर मेरे लिए भी अब वैसे खट्टे नहीं रह गये! कुछ तो बहुत ही मधुर जान पड़े!

छिद्रान्वेषियों की कटु-तीक्ष्ण 'चोट' तो अपनी ही चीज़ ठहरी, उसकी क्या चिन्ता, परन्तु इस उन्माद में मुझे सँभालने का भार स्वीकार करने की कृपा मेरे उदार समालोचकों को ही करनी पड़ेगी। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि चेताये जाने पर मैं अपना प्रमादस्खलन ठीक करने की यथा-साध्य अवश्य चेष्टा करूँगा—

होंगे निन्दक तथा प्रशंसक तो बहुतेरे,
जुग जुग जीते रहें समालोचक जन मेरे।

इस बीच में हिन्दी में भी उमर ख़य्याम की रुबाइयों की कुछ कुछ चर्चा होने लगी है। दो एक सज्जन मूल फ़ारसी और मूल से भी अधिक प्रसिद्ध अंगरेज़ी अनुवाद से उनका अनुवाद कर रहे हैं—और बड़े आकार प्रकार में। मेरे ये थोड़े से पृष्ठ तब तक उनकी वाणी-रानी के स्वागत के लिए पाँवड़े के रूप में समझे जाँय।

आशा है, इस सम्बन्ध में अब मुझसे और कुछ कहलाने की कठोरता कोई न करेगा।

अनुवाद के विषय में मुझे इतना ही कहना है कि मैंने कहीं कहीं दो एक वाक्य अपनी ओर से बढ़ाये हैं। ऐसा करने में इस बात का पूरा ध्यान रक्खा है कि वे मूल के अर्थ का ह्रास न करके विकास ही करें।

एक आध बात मैंने कुछ भिन्न प्रकार से भी कही है। यदि फ़िट्ज़ेराल्ड अपने अनुवाद में मूल की काट छाँट कर सकता है तो दो एक स्थान पर वैसा करने का मैं भी अपना अधिकार कैसे छोड़ सकता हूँ। परीक्षक ही मेरे औचित्य अथवा अनौचित्य के प्रमाण हैं।

जब मित्रों ने इस पुस्तक को प्रकाशित करने का निश्चय कर लिया तब उनके साथ बैठकर मैंने इसे एक दो बार फिर पढ़कर इसमें कुछ संशोधन किये हैं।

दो बार पद्य बदल भी दिये हैं। ऐसे दो पद्य नीचे उद्धृत किये जाते हैं, जो पीछे से बदल दिये गये—

मधुशाला द्वारस्थित जन यों बोल उठे कुक्कुट के साथ—
'तो अब द्वार खोलदो झटपट, होने दो हाँ हमें सनाथ।
कितनी थोड़ी देर यहाँ पर हमको रहना है सोचो,
एक बार जाकर फिर आना, बोलो यह है किसके हाथ।'

—तीसरा पद्य।

देखो पाटल क्या कहता है यह आँखों में धँस धँस कर,
'खिल जाता हूँ मैं धरती पर काँटों में भी फँस फँस कर।
और खोल कौशेय कोश निज एक बार ही उसमें की,
सारी ऋद्धि लुटा जाता हूँ इस उपवन में हँस हँस कर।'

—तेरहवाँ पद्य।

५४ वें पद्य का जो अनुवाद पहले किया गया था वह मूल फ़ारसी के अनुसार इस प्रकार था—

प्रथम पलाने थे जब उसने तपन-तुरंग गगनचारी,
और नियत-ग्रह नक्षत्रों की कर दी थी गति-विधि सारी।
हुआ भाग्य निर्णय मेरा भी तभी तभी, तो बतलाओ,
हुआ पापकारी कैसे मैं, हूँ बस भाग्य-भाग-धारी।

मेरी तो इच्छा थी कि आकाश के ग्रह नक्षत्रों के साथ साथ पृथ्वी की रचना का संकेत करते हुए, घोड़ों को हाथी बना दूं—

'सुनो, दिग्गजों पर रक्खी थी जिस दिन उसने अंबारी।'

परन्तु ऐसा करने में निरंकुशता लेनी पड़ती। उसे मैं कवियों के लिए ही छोड़ता हूँ। मेरे लिए तो कृपालु जनों की कलम-कशा ही पर्याप्त है।

अन्त में खेद यही है, जिस संतोष के साथ फिट्ज़ेराल्ड ने अपना अनुवाद समाप्त किया होगा वह मेरे भाग्य में नहीं। फिर भी, मेरे न्यायाधीश मुझे क्षमा करें या न करें, मूल ग्रन्थकार की आत्मा के निकट मैं निराश नहीं—

इसे जानता होगा तू क्या ओ आमोदी, उपभोगी,
तेरे इन मधुमय गीतों की एक समय यह गति होगी?
हे दैवज्ञ, तदपि निश्चय ही चिर निश्चिन्त रहेगा तू,
तेरे ही मत से सब बातें होती हैं विधि-संयोगी।

मैथिलीशरण गुप्त

श्रावणी, १९८६.

उमर ख़य्याम
और
उनकी कविता

(१)

फ़ारसी साहित्य की सूफ़ियाना कविता में मौलाना रूम और हाफिज़ के बाद उमर ख़य्याम का ही नाम लिया जाता है। कुछ लोगों की सम्मति में तो वह फ़ारसी के सर्व श्रेष्ठ कवि हैं। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि आज से कुछ वर्ष पहले उमर ख़य्याम का नाम भी किसी ने नहीं सुना था, यहाँ तक कि फ़ारस निवासी भी अपने देश के इस प्रतिभाशाली और विद्वान् कवि से परिचित न थे।

उमर ख़य्याम और उनकी रुबाइयों से हमारा जो कुछ परिचय है वह विख्यात अंग्रेज़ी कवि फिट्ज़ेराल्ड कृत सुन्दर और सुललित अंग्रेज़ी अनुवाद द्वारा। फिट्ज़ेराल्ड ने उमर ख़य्याम को अमर बना दिया है। साथ ही पठित समाज में जब तक उमर ख़य्याम का नाम जीवित है तब तक फिट्ज़ेराल्ड भी विश्व साहित्य के

इतिहास में अमर रहेंगे। साहित्य जगत् में फ़िट्ज़ेराल्ड का अनुवाद इतना सुपरिचित और समादृत है कि यदि कोई वास्तविक उमर ख़य्याम की सत्ता पर अविश्वास प्रकट करके इस नाम को बनावटी और कविकल्पना कह उठे तो वह क्षम्य होगा! इस संभावना को एक दफ़े सत्य का आधार मिल गया। फ़ारस के शाह इंगलैंड की सैर करने गये। वहाँ उमर-ख़य्याम क्लब के सदस्यों ने उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित किया। शाह ने निमंत्रण स्वीकार करने के पूर्व आश्चर्य से मुँह बनाकर पूछा—"मगर यह उमर ख़य्याम था कौन?" अपने देश में चाहे कवि और पंडित की पूजा न हो, परन्तु बाहर के लोग किसी न किसी प्रकार उससे परिचित हो जाते हैं। आक्सफर्ड की बॉडलियन लाइब्रेरी (Bodlein Library) में और अन्यत्र कुछ प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ सुरक्षित हैं जो शाह के उक्त प्रश्न को उपहासास्पद सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

(२)

उमर ख़य्याम का जन्म ख़ुरासान प्रदेश के अन्तर्गत नैशापुर नामक नगर में हुआ था। उनकी जन्म-तिथि आज तक निर्णीत नहीं हुई। कुछ विद्वानों की राय में उनका जन्म सन् १०४० ई० के आस पास हुआ। कुछ की सम्मति है कि वे सन् १०५० और १०६० के बीच में पैदा हुए। उनकी मृत्यु ११२३ में हुई। कवि का पूरा नाम था गयासुद्दीन अबुलफ़तह उमर बिन इब्राहीम अल ख़य्याम। ख़य्याम कवि का तख़ल्लुस अथवा उपनाम है। इस शब्द का अर्थ 'ख़ेमा बनाने वाला' है। इससे प्रकट होता है कि उमर ख़य्याम के पूर्व-पुरुष ख़ेमा बनाने का काम करते थे। स्वयं उमर ख़य्याम ने यह काम किया या नहीं यह निश्चत रूप से नहीं कहा जा सकता। अनेक फ़ारसी कवियों ने अपनी जीवन-वृत्तियों से अपने उपनाम ग्रहण किये हैं। जैसे अत्तार, इत्र बेचने वाला; अस्सार

तैल बेचने वाला; इत्यादि। स्वयं उमर ने जिन रहस्य मयी पंक्तियों में अपने इस नाम का उल्लेख किया है उनका अंग्रेज़ी अनुवाद इस प्रकार है :—

"Khayyàm, who stitched the tents of science,
Has fallen in grief's furnace and been suddenly burned;
The shears of Fate have cut the tent ropes of his life,
And the broker of Hope has sold him for nothing!"

उमर ख़य्याम ने इतिहास के उस युग में जन्म ग्रहण किया था जब यूरोप के लोग निरे जंगली थे, जब वहाँ के ज्ञान-क्षितिज पर अज्ञान का अंधेरा छाया था, जब स्काटलैंड में मैलकम कैमोर का दबदबा था, जब इंगलैंड में सैक्सन राजाओं का आधिपत्य था, और जब सरदार अत्याचारी थे तथा प्रजा गुलाम। उस समय यूरोप में न तो छापे की कलें थीं, न बेकन था, न चौसर था और न शेक्सपियर था; था केवल अंधकार, अज्ञान और अविश्वास का राज्य। इसके विपरीत उस समय पूर्व में ज्योति थी, जीवन था, ज्ञान था, और साहित्य था। अरब और फ़ारस के साहित्य-गगन में उमर अपने समय का एक मात्र ज्योतिष्क नहीं था। समय के विशाल और मुखरित अलिन्द में हमें अब भी सादी, हाफ़िज़, मौलाना रूम, और फिरदौसी आदि नामों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ रही है।

नैशापुर की प्राचीन नगरी, उमर की जन्मभूमि, काफ़िले के उस प्राचीन मार्ग पर स्थित है जो भारतवर्ष से फ़ारस को जाता है। वर्त्तमान समय में यह भग्नावशेषों से घिरा हुआ एक छोटा सा गाँव है। नगर के प्राचीन गौरव की स्मृति दिलाने के लिए दो चार मसजिदें, एक निस्तब्ध निर्जन बाज़ार मात्र शेष रहा है।

उमर के समय में ८०० वर्ष पहले, नैशापुर वैभव की चरम सीमा पर स्थित था। इसकी जनसंख्या ३००,००० से अधिक थी। इसका नाम सूर्य के आसन – The Stead of the Sun – का द्योतक है। यह फ़ारस की

तत्कालीन संस्कृति का केन्द्र था। फ़ारसी कवियों ने इसे वसुन्धरा के कण्ठहार के मध्यमणि की उपमा दी है। एक कवि ने इसके संबंध में कहा है—"यदि पृथिवी पर कहीं स्वर्ग है तो वह नैशापुर है, और यदि नहीं है तो और कहीं उसका अस्तित्व नहीं है।"

कहते हैं कि वैभव और समृद्धि के उस अतीत युग में नैशापुर में आठ बड़े बड़े विश्वविद्यालय, अनेक मसजिदें, और तेरह पुस्तकालय थे, जिनमें से एक में ५००० हस्तलिखित पुस्तकें संगृहीत थीं। निस्सन्देह उस ज़माने में जब कि मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था, और सस्ते तथा सुलभ संस्करणों का कोई नाम न जानता था यह संग्रह एक बहुमूल्य और स्पृहणीय वस्तु रहा होगा।

संक्षेप में ऐसी थी नैशापुर की तत्कालीन अवस्था जिसमें हमारे कवि ने जन्म ग्रहण किया। हमारी समझ में उसकी प्रतिभा के विकास के लिए इससे अधिक उत्तम और अनुकूल परिस्थिति की कल्पना करना कठिन है। उमर ख़य्याम का बाल्य-जीवन कैसे व्यतीत हुआ, इसका निश्चित रूप से पता नहीं। उन्होंने उच्च श्रेणी की शिक्षा पाई थी यह निर्विवाद है। वे अपने समय के विज्ञान, दर्शन-शास्त्र और गणित में पारङ्गत थे। उनकी स्मरणशक्ति बड़ी विलक्षण थी। एक बार उन्होंने इस्फ़हान में एक किताब पढ़ी और नैशापुर में आकर उसे ज्यों का त्यों लिख डाला। उन के विद्यार्थि-जीवन की एक घटना बहुत प्रसिद्ध है। विद्वानों को उसकी सत्यता पर सन्देह है। घटना इस प्रकार है :—

बाल्यावस्था में उमर ख़य्याम को ख़ुरासान के प्रसिद्ध कवि और दार्शनिक इमाम मुअफ़्फ़िक़ के निकट शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग मिल गया। यहाँ उनके सहपाठी थे—अली इमाम तौसी और हसन बिन सब्बाह। तीनों में घनिष्ठ मैत्री थी। एक दिन इन में इस प्रकार क़ौल क़रार हुआ—तीनों व्यक्तियों में से भविष्य में जो कोई उच्चपद पर पहुँचे वह अन्य दो सहपाठियों की सहायता करे।

कालान्तर में अली इमाम तौसी 'निज़ाम-उल्-मुल्क' की उपाधि से भूषित होकर फ़ारस के राजमंत्री पद पर प्रतिष्ठित हुआ। यह समाचार पाकर उसके दोनों बाल्यबन्धु उससे मिलने आये। वज़ीर ने अपनी बात रक्खी। हसन बिन सब्बाह ने राज्य में कोई उच्च पद माँगा। वज़ीर के अनुरोध से सुलतान ने उसकी इच्छा पूर्ण की। परन्तु क्रमिक पदोन्नति से संतुष्ट न होकर हसन ने अपने उपकारी के विरुद्ध एक घृणित षड़यंत्र रचा और अन्त में भंडाफोड़ होने पर लाञ्छित और पदच्युत हुआ। बाद इसी हसन ने कुख्यात 'गुप्त-घातक सम्प्रदाय' का संगठन किया, जिसकी बदौलत वह फ़ारस के इतिहास में भीषण नरहत्याकारी के नाम से प्रसिद्ध है। उसने मौक़ा पाकर अपने बाल्यबन्धु और परम उपकारी निज़ाम-उल्-मुल्क की हत्या कर डाली! ज़रा उमर से इस नरपशु की तुलना कीजिए! उमर ने अपने सौभाग्य-लालित बन्धु से धन, सम्पद, सम्मान, पदवी, ऐश्वर्य, कुछ भी नहीं माँगा। माँगा केवल भाग्यवान् बंधु की सदिच्छा और सौभाग्य की छाया तले किसी निर्जन और शान्तिमय कोने में बैठकर निश्चिन्त भाव से गंभीर ज्ञानानुशीलन का अबाध सुयोग! वज़ीर को पहिले तो बड़ा आश्चर्य हुआ, परन्तु अन्त में उमर के हृदय का सच्चा परिचय पाकर उसने अपने मित्र के लिए १००० रुपये वार्षिक वृत्ति की व्यवस्था कर दी।

फ़ारसी साहित्य के इतिहास लेखकों ने उमर के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उससे प्रकट होता है कि वह कवि की हैसियत से विशेष ख्याति न पा सके। फ़ारसी साहित्य के इतिहास लेखक श्री० ब्राउन का कहना है कि उस समय के लोग उमर को गणितवेत्ता, दार्शनिक और ज्योतिषी के रूप में ही अधिक जानते थे। राज दरबार में भी उमर को ज्योतिषी का ही सम्मान प्राप्त था। उन्होंने मार्व में आकर सुलतान मलिक शाह की आज्ञा से फ़ारस के पञ्चाङ्ग का संस्कार किया था। इसी समय से जलाली संवत् का प्रचार हुआ। उमर ख़य्याम ने 'ज़िजी मलिक शाही' के नाम से एक प्रसिद्ध ज्योतिष सिद्धान्त की गणना भी की थी एवं हाल ही में उनकी रची बीज गणित की एक पोथी का फ्रेंच अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

इसके अतिरिक्त अंकगणित, जड़विज्ञान और जीव-विज्ञान के संबंध में भी उनकी एकाध रचना देखने में आई है। कवि की अपेक्षा वैज्ञानिक के रूप में ही वे अधिक प्रसिद्ध थे। उमर के जीवन में नियति का अन्याय बहुत ही स्पष्ट है। उनके देशवासियों ने उनकी कविता का तिरस्कार किया। उनकी रुबाइयों को 'सुरा और सुन्दरियों' के संबन्ध की निरर्थक रचना बताया। निस्सन्देह कवि के हृदय में भी कभी कभी यह भाव कसक पहुँचाता था—

उन बेवफ़ा बुतों ने, जिनको मैंने इतना प्यार किया,
सचमुच लोगों की आँखों में मुझे बहुत ही गिरा दिया।
हाय ! एक उथले प्याले में मान डुबाया है मेरा,
एक गीत पर कीर्त्ति बेच दी, प्रेम किया या बैर लिया ॥

समय भी प्रतिशोध लेता है। उमर की अधिक गंभीर रचनायें तो अवश्य विस्मृति के गर्भ में पड़ गई हैं, परन्तु उनकी कोमल कान्त और संगीतमय रुबाइयाँ युग युग की वस्तु हो गई हैं जो उनके सिर अमरत्व का सेहरा पहिना रही हैं। ठीक है, उन्हीं के शब्दों में—

सांसारिक लिप्साएँ जिन पर आशा करते हैं हम लोग,
मिट्टी में सब मिल जाती हैं पाकर सौ विघ्नों के रोग।
कहीं फूलती फलती भी हैं तो बस घड़ी दो घड़ी ही,
ज्यों मरु के धूसर मुख पर हो हिमकण की आभा का योग।

हमें कवि के जीवन के अन्तिम दिनों की एक झाँकी और मिलती है। उनका एक शिष्य, समरक़न्दनिवासी ख्वाजा निज़ामी लिखता है:—"ज्ञानियों के राजा उमर ख़य्याम की मृत्यु ५१७ हिजरी (सन् ११२३ ई०) में नैशापुर में हुई। वे विज्ञान के अद्वितीय पंडित थे, वे अपने समय के महामनीषी कहे जा सकते हैं। वह मेरे गुरु थे। मैं बहुधा उद्यान में बैठकर उनके साथ ज्ञानचर्चा किया करता था। एक

दिन उन्होंने मुझ से कहा, "मेरी समाधि ऐसे स्थान में होगी जहाँ उत्तरी वायु उस पर पाटल-प्रसूनों की वर्षा किया करेगी।" मुझे उनकी बातों पर महान् आश्चर्य हुआ। मैं उन्हें निरी कवि-कल्पना समझ कर हँसी में नहीं उड़ा सका। उनकी मृत्यु के अनेक वर्षों के उपरान्त मैं जब पुनः नैशापुर पहुँचा तब उनकी समाधि के दर्शन करने गया—जाकर देखता हूँ, एक उद्यान के निकट उनकी अन्तिम शय्या रची गई है, और पुष्प भारावनत वृक्षसमूह मानों उद्यान की प्राचीर के ऊपर अपने शाखाबाहु फैला कर कवि की समाधि के ऊपर पुष्पवर्षा कर रहे हैं। उन फूलों से समाधि की वेदी पूरी ढक गई है!" उमर का अन्तिम मनोभिलाप जिसे उन्होंने निम्नलिखित रुबाई में प्रकट किया है,—

हा, मेरे बुझते जीवन को द्राक्षा-रस से दीप्त करो,
और उसी से मृत शरीर को धोकर उसकी धूलि हरो।
द्राक्षा-दल का कफ़न बना कर उसमें मुझे लपेटो फिर,
और किसी उद्यान पार्श्व में गर्त्त बनाकर गाड़ धरो।

इस प्रकार अक्षरशः सफल होते देखकर शिष्य का हृदय निस्सन्देह पुलकित हो उठा होगा!

(३)

यूरोप का कवि समाज उमर की कविता पर मुग्ध है। यूरोप की ऐसी कोई भाषा नहीं जिसमें उमर की रुबाइयों का एकाध अनुवाद न हुआ हो। उमर के प्रति यूरोपवासियों का इतना आकर्षण है कि उनकी कविता की चर्चा के लिए वहाँ अनेक उमर-क्लब स्थापित हो गये हैं। उमर के प्रेमियों ने उनकी अन्य रचनाओं की खोज करने के लिए आकाश पाताल एक कर डाला है। जिसका परिणाम यह हुआ कि आज तक उमर की प्रायः १२०० रुबाइयों का पता चला है। किन्तु विद्वानों का कहना है कि उमर की रचना ३०० से अधिक नहीं। शेष सब क्षेपक है। प्रसिद्ध रूसी पंडित शुकोभेस्की ने अपने 'रुबाइयाते उमर खय्याम' प्रबंध में उद्धृत

करके बताया है कि उमर के नाम से प्रचलित प्रायः ८२ रुबाइयाँ हाफ़िज़, निज़ामी, जलालुद्दीन, रूमी, इत्यादि प्रसिद्ध फ़ारसी कवियों की रचना हैं। विलायत की बोडलियन लाइब्रेरी में जो हस्तलिखित पोथी संगृहीत है उसमें केवल १५८ रुबाइयाँ हैं। यह पोथी अब तक की प्राप्त हुई सब पोथियों में प्राचीन है। इस पर सन् १४६० ई० की तिथि पड़ी है। १८९८ ई० में एडवर्ड हैरन एलन (Edward Heron Allen) ने मूल के फोटोग्राफ़ समेत इन रुबाइयों का गद्यानुवाद प्रकाशित किया था।

यह प्रतिलिपि प्राचीन हस्तलिखित पोथियों के ढेर में प्रोफेसर कावेल (Cowell) के हाथ लगी थी। यह देखने में बड़ी सुन्दर है। मोटे पोले स्वर्णरंजित कागज़ पर चमकीली काली स्याही से लिखी गई है। पेरिस की नेशनल लाइब्रेरी में तीन प्रतिलिपियाँ संगृहीत हैं, जिन पर क्रमशः १५१५, १५२८ और १५३० की तिथियाँ पड़ी हैं। कलकत्ता में प्राप्त प्रतिलिपि सन् १५४८ की है। यह अब खो गई है। प्रोफ़ेसर कावेल ने फिट्ज़ेराल्ड के लिए इसकी एक प्रतिलिपि तैयार करवाई थी। फिट्ज़ेराल्ड ने अपना अनुवाद इसी के आधार पर किया है।

मि० कावेल उस समय केम्ब्रिज में संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने हाफ़िज़ की कुछ कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। फिट्ज़ेराल्ड को वह बहुत पसंद आया। उस समय वह फ़ारसी का अध्ययन कर रहे थे। अवसर पाकर उन्होंने उमर की रुबाइयों को फ़ारसी जमीन से उठा कर अंग्रेजी साहित्योद्यान में रोपित किया। उनके इस कार्य से फ़ारसी गुलाब की कुम्हलाती हुई कलियाँ फिर से हरी ही नहीं हो गईं, वरन् उनमें सौरभ और सौंदर्य का अनन्त स्थायित्व आ गया। उनकी सुगंध से आज निखिल विश्व का कोना कोना आमोदित है।

फिट्ज़ेराल्ड की रुबाइयों का प्रथम संस्करण २५० प्रतियों का था। उनपर अनुवादक ने अपना नाम नहीं दिया। फिट्ज़ेराल्ड ने कुछ प्रतियाँ तो अपने मित्रों

को भेंट दीं, और शेष बिक्री के लिए प्रकाशक के हवाले कर दीं। प्रकाशक ने पहले तो एक प्रति का मूल्य २ शि० ६ पै० रक्खा ; अन्त में बिक्री न होने के कारण १ शि० और फिर ६ पैंस। परन्तु एक अज्ञातनामा लेखक की रचना को कोई कौड़ी मोल भी लेने को तैयार न हुआ। तब प्रकाशक ने निराश होकर उमर खय्याम की प्रतियाँ अपनी दुकान के सामने रद्दी के सन्दूक में फेंक दीं ! अब यदि किसी दूकानदार को वे दो सौ प्रतियाँ मिल सकें तो वह सहज ही में लखपती बन जाय। कुछ दिनों बाद उस प्रकाशक ने वही किताब दस दस गिन्नी में बेची ; और थोड़े दिनों की बात है कि फिट्ज़ेराल्ड कृत उमर खय्याम के अंग्रेज़ी अनुवाद के प्रथम संस्करण की एक प्रति ३५ गिन्नी में नीलाम हुई !

९ वर्ष बाद पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ। तीसरा संस्करण १८७२ का है और चौथा १८७९ का। ये चारों संस्करण फिट्ज़ेराल्ड के जीवन काल में ही प्रकाशित हुए और उनमें अनुवाद कर्त्ता ने अनेक संशोधन और परिवर्त्तन किये। अनुवादक को अपने प्रथम प्रयत्न में ही आश्चर्य जनक सफलता मिली। पहली रुबाई ही देखिए, कितनी प्रसादगुणमयी रचना है—

Awake ! for Morning in the Bowl of Night,
Has flung the Stone that puts the Stars to Flight :
And Lo ! the Hunter of the East has caught,
The Sultan's Turret in a Noose of Light.*

---

*उठो, उषा ने रात्रि-पात्र में अरुण उपल निक्षेप किया।
ऋक्ष-पंक्तियों को जिसने है नभःक्षेत्र से उड़ा दिया।
और पूर्व के जालिक रवि ने वह ऊँचा शाही मीनार,
देखो, कोटि कोटि किरणों के फन्दे में है फाँस लिया।

गत तीस वर्षों में उमर की रुबाइयों के अनेक अंग्रेज़ी गद्य और पद्यानुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनमें बहुत से सचित्र हैं। सुलभ और राज संस्करणों का हाल न पूछिए। एक पेनी से लगा कर दस पौंड तक के संस्करण मौजूद हैं।

उमर का यूरोप में जो कुछ समादर हुआ वह फिट्ज़ेराल्ड के कारण। कुछ लोगों का कहना है कि फिट्ज़ेराल्ड ने रुबाइयों का अनुवाद न करके उनकी व्याख्या की है। परन्तु बात असल में ऐसी नहीं है। फिट्ज़ेराल्ड ने मूल की आत्मा के भीतर पैठ कर उसकी काया पलट की है। कहने में तो यह बात बहुत सरल जान पड़ती है परन्तु स्वयं कवि हुए बिना कविता का अनुवाद करना अपनी और मूल लेखक की हँसी कराना है। फिट्ज़ेराल्ड ने मूल का अविकल अनुवाद नहीं किया। उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार कहीं एक रुबाई को तोड़ कर दो के रूप में छन्दोबद्ध किया है, कहीं दो तीन रुबाइयों को लेकर एक कर दिया है। इस संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि जहाँ कहीं अनुवादक ने मूल के भाव को नया परिच्छद देने का प्रयत्न किया है वहीं उसे सच्ची सफलता मिली है। अनुवादक स्वयं कवि और जीवन भर ग्रीक और स्पेनिश भाषा से अनुवाद करता रहा। उसने फ़ारसी की अन्य रचनाओं को भी अनूदित करने का प्रयत्न किया; परन्तु इनमें से न तो कोई अनुवाद और न स्वयं उसकी रचना ही अंग्रेज़ी साहित्य की स्थायी सामग्री बन सकी। इससे स्पष्ट है कि यह उमर का काव्य चमत्कार ही है जिसने फिट्ज़ेराल्ड को विश्व-साहित्य-मंदिर के एक कोने में चिरस्थायी स्थान दिलाया है।

फिट्ज़ेराल्ड की पुस्तक के अन्तिम संस्करण में १०१ पद्य हैं। इनमें से ४६ मूल के सुन्दर और व्याख्यात्मक अनुवादक हैं; ४४ ऐसे हैं जो मूल के दो दो तीन तीन पद्यों की एक एक छाया है, २ पद्य केवल पैरिस की लाइब्रेरी में संगृहीत पोथी के एक पाठ में हैं; २ में उमर और हाफ़िज़ के काव्य की छाया है, २ मूल के पद्यों का भाव लेकर लिखे गये हैं, और २ ऐसे हैं जिनका मूल से कोई सम्बन्ध

१७

जहाँ शाह जमशेद-विभव था, वही जहाँ मदिरा लहरी,
बने आज उन राजगृहों के सिंह-श्रृगालादिक प्रहरी,
        उस बहरामगोर के सिर पर जो मशहूर शिकारी था,
टाप गोर-खर चला रहा है, पर है नींद वही गहरी !

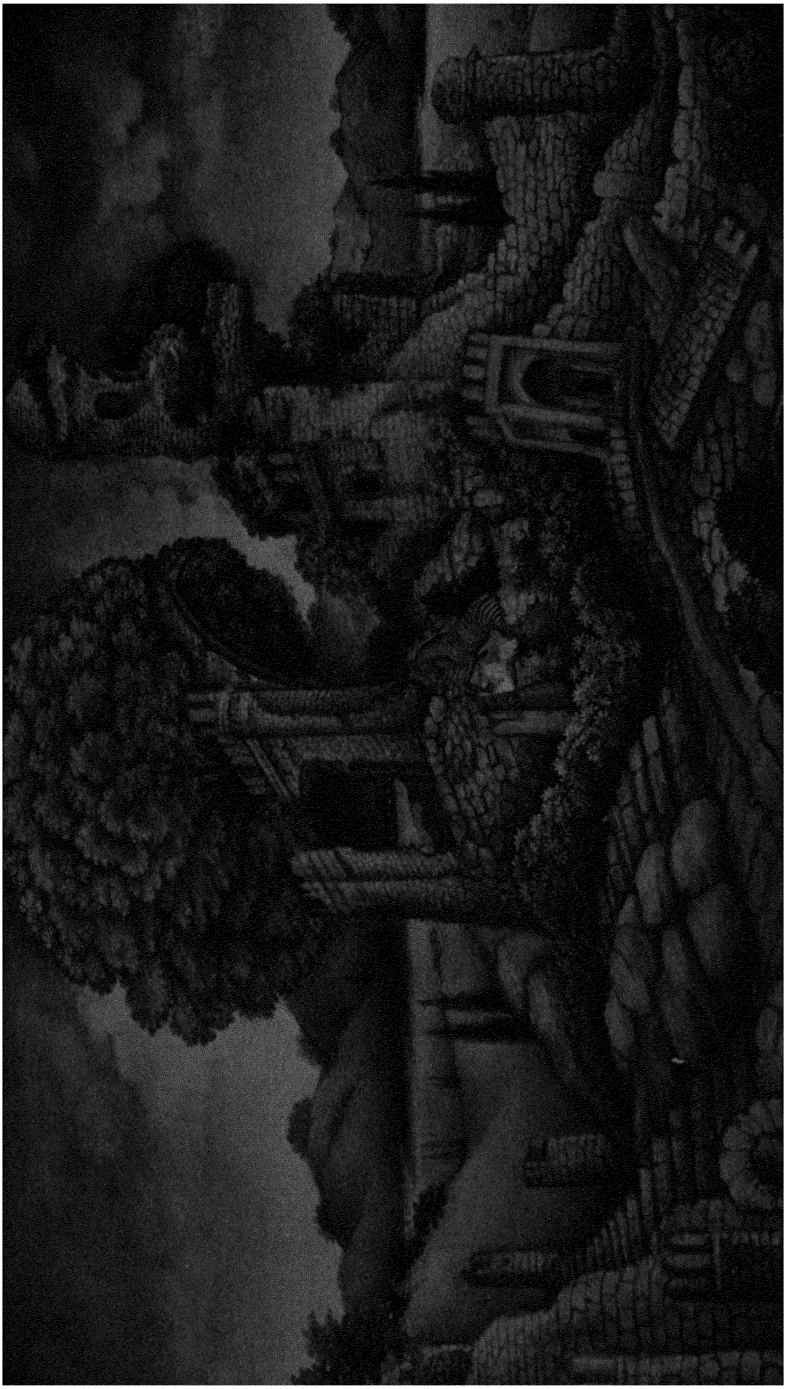

नहीं जान पड़ता, फिर भी उनमें अस्पष्ट रूप से उमर की कविता का रूप देखने को मिलता है।

दो शब्द मूल रुबाइयों के सम्बन्ध में भी।

जिस छन्द में उमर ने अपनी उक्तियों को मूर्तिमान किया है उसका नाम रुबाई है। इसी शब्द का बहुवचनान्त रूप रुबाईयात है। यह शब्द अरबी भाषा का है और इसका अर्थ है चार। इस छन्द को हम चतुष्पदी कह सकते हैं। इस चतुष्पदी के चार चरणों में प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरण तुकान्त होते हैं, तृतीय स्वाधीन होता है। कभी कभी उसे भी तुकान्त कर देते हैं। समग्र चतुष्पदी के भाव को घनीभूत करना और उसकी गति का निर्देश करना ही चतुर्थ चरण का कार्य है। इस छन्द का सर्व-प्रथम प्रयोग सूफ़ी कवि शेख अबू सैयद बिन अबुलखैर ने किया। परन्तु उमर का उद्देश्य कुछ भिन्न है। यद्यपि उनकी कुछ रुबाइयों में विशुद्ध रहस्य वाद और सर्वेश्वरवाद (Pantheism) की छाया है, परन्तु अधिकांश कवि की स्वाधीन मनोवृत्ति का फल है। फिट्ज़जेराल्ड ने अपना अंग्रेज़ी अनुवाद मूल छन्द में ही किया है। ऐसा करने में उन्हें कितनी कठिनाई हुई होगी यह कहने की आवश्यकता नहीं। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद कर्त्ता ने भी वही मार्ग ग्रहण किया है।

(४)

उमर की कविता में इतनी विभिन्नता और विचित्रता है कि उसके नाना भक्तों और उपासकों ने उसके नाना अर्थ किये हैं। उनकी समस्त कविता में जो भाव प्रस्फुटित हुआ है वह है मनुष्य के हृदय का वही चिरन्तन और सब से बड़ा प्रश्न—

यहाँ 'कहाँ से, क्यों ?' न जान कर परवश आना पड़ता है,
वाहित विवश वारि-सा निज को नित्य बहाना पड़ता है।
'कहाँ चले ?' फिर कुछ न जानकर, इच्छा हो कि अनिच्छा हो,
परपट पर सरपट समीर सा हमको जाना पड़ता है।

यह प्रश्न सृष्टि के आरम्भ से ही बारंबार मानव हृदय में उठा है, तो भी इस दुर्ज्ञेय पहेली, इस जटिल समस्या का उत्तर कोई नहीं दे पाया। उमर ने इसका उत्तर दिया है। वह कहते हैं।—

जगत मिथ्या है।

उनका यह भाव नया नहीं है। वेदों में इसका उल्लेख है, बाइबिल में इसका वर्णन है, रेनन (Renan) ने वर्त्तमान फ्रेंच साहित्य में इसका प्रचार किया है और इबसन के नाटकों में भी इसकी छाया है। यह माया, यह अविश्वास, यह निराशावाद, युग परिवर्त्तन के समय प्रत्येक जाति और समाज के सूक्ष्मदर्शी व्यक्तियों के दृष्टिगोचर होता है। उमर ने इसे कहाँ से प्राप्त किया यह कहना कठिन है। संभव है अपने सहपाठियों का अन्तिम परिणाम देखकर उनका हृदय जगत के प्रति निराशा और अविश्वास से भर गया हो। अथवा यह भी संभव है कि तुर्कों को अपने देश पर आक्रमण करते देख संसार की ओर से उनका मन फिर गया हो। अथवा यह भी संभव है कि ज्ञान के अगाध समुद्र में डुबकी लगाकर उन्होंने यह तत्व उपलब्ध किया हो कि—

जगत मिथ्या है और ब्रह्म भी मिथ्या है।

उमर घोरतर अदृष्टवादी थे। विश्व के स्त्री पुरुषों को उन्होंने नियति के हाथ का गेंद माना है। जन्मान्तर और परलोक पर उनका विशेष विश्वास नहीं था। वेदान्त दर्शन के साथ कई विषयों में उमर के विचारों का सादृश्य देखने में आता है।

उमर स्वाधीन चिन्ता के पक्षपाती थे। वह उपदेशक और युग-प्रवर्त्तक थे। वह जीवन भर धर्म गुरुओं और साधुओं के पाखंड, पंडितों की अज्ञता एवं जन साधारण की अशिक्षता का घोर विरोध करते रहे। उनकी रुबाइयों में स्थल स्थल पर इसके प्रमाण मिलते हैं। यही कारण है कि वह अपने देश में

कभी सर्व प्रिय नहीं हुए। पश्चिम के लोग उन्हें पूर्व का वालटेयर (Voltair) कहते हैं, और जड़वादी और नास्तिक बताकर उनका तिरस्कार करते हैं। जहाँ तक भाषा के सौंदर्य, मार्मिक व्यंग्य, उपालंभ और मानव प्रेम का संबंध है, वहाँ तक उमर निस्सन्देह वालटेयर के समकक्ष हैं। इस दृष्टि से उन्हें हम अपने कबीर की कोटि का कह सकते हैं। परन्तु वालटेयर ने सुरा और सरक, प्रेम और सौन्दर्य, बसन्त और उद्यान के संबंध में ऐसी सुन्दर कविता नहीं की। न उसने ऐसे मार्मिक ढँग से अदृष्ट की निर्ममता ही प्रकट की है। अस्तु।

उमर बड़े मौजी और आनन्दी जीव थे इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि वह शराबी या चरित्रहीन थे। ऐसे भी कवि हुए हैं जिन्होंने शराब की प्रशंसा के गीत गाये हैं परन्तु वह शराबी नहीं थे।

कुछ लोगों ने उमर की चतुष्पदियों में सूफ़ियों के अद्वैतवाद की आध्यात्मिक व्याख्या खोज निकाली है। परन्तु सुरा और सरक की प्रशंसा में आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य को खोजने का प्रयत्न करना हमें तो व्यर्थ सा जान पड़ता है। हाफ़िज़ के सम्बन्ध में अवश्य यह कहा जा सकता है। समस्त परम्परा-गत इतिहास और स्वयम् रुबाइयों की अन्तरात्मा इस बात की साक्षी हैं कि उमर ने सुरा और साक़ी की प्रशंसा में जो कुछ कहा है वही उसका अर्थ है। अधिकांश चिन्ताशील और विचारवान् व्यक्तियों के जीवन में एक समय आता है जब वह कह उठते हैं कि जगत् मिथ्या है। उमर की कविता उसी समय की द्योतक है। वह वेदान्त दर्शन की उस गहराई तक नहीं पैठते जहाँ सब मिथ्या है—शराब भी मिथ्या है, और सुन्दरी भी मिथ्या है। उनका शराब का प्याला कबीर का प्रेम प्याला नहीं—

"कबीर प्याले प्रेम के, भरि भरि पिवै रसाल।"

उमर तो शराब की मस्ती में आँखें मूँद कर कहते हैं—

"Ah, my Beloved, fill the Cup that clears
To-day of past Regrets and future Fears :—
To morrow ?—Why, To morrow I may be
My self with Yesterday's Sev'n Thousand Years.

Why, be this Juice the growth of God, who dare
Blaspheme the twisted tendril as a snare ?
A Blessing, we should use it, should we not ?
And if a Curse—why, then, Who set it there ?"

उमर को हम उद्यान के एक कोने में वृक्षों की शीतल छाया के तले फ़ारस की सुन्दरी नर्तकियों और गायिकाओं से घिरा और रत्न जटित स्फटिक के खूबसूरत प्यालों में पद्मराग मणि जैसी सुर्ख और चमकीली अंगूरी शराब पीता हुआ चित्रित कर सकते हैं। अथवा हम उन्हें संध्या के समय किसी उद्यान की नक्षत्रालोकित संकीर्ण बीथियों में कालचक्र के बीच में पड़े हुए सौन्दर्य और यौवन के दुर्वार और निश्चिन्त परिणाम पर विचार करता हुआ देख सकते हैं—

Whether at Naishapur or Babylon,
Whether the cup with sweet or bitter run,
The Wine of Life keeps oozing drop by drop,
The Leaves of Life keep falling one by one.

यूरोप के लोग उमर की कविता पर जो इतने मुग्ध हैं, इसका कारण यह है कि वह दार्शनिक और पंडित होते हुए भी कवि थे। अंग्रेज़ी के एक कवि ने जब उमर के शब्दों में उपदेश दिया—

"Gather ye Rose-buds while ye may;
Old Time is still a-flying:
And this same flower that smiles to-day,
To-morrow may be dying."

तब नई सभ्यता का स्वप्न देखने वाले भोगी विलासी इंगलैंड और फ्रान्स ने उमर को अपना ही कवि समझा। उन्हें उमर की कविता में बुलबुल का संगीत, बसंत का वैभव, गुलाब का सौंदर्य, शराब की मस्ती और सुन्दरियों का बखान ही नहीं दीख पड़ा, वरन् उन्होंने उसमें अपने ही हृदय का स्पष्ट चित्र देखा। ज्ञान-विज्ञान की चर्चा के फल स्वरूप यूरोप के लोग अपने धर्म के प्रति अविश्वासी हो उठे थे। उमर की कविता ने उस अविश्वास की एक हलकी सी थपकी दी। समस्त यूरोप, कह उठा—'वाह !' फिर क्या था। उन लोगों ने अपने मनोराज्य में उमर के लिए तुरन्त एक गौरवमय स्थान दे दिया। रामायण और महाभारत उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं। कालिदास की वहाँ कोई इतनी चर्चा नहीं करता। परन्तु उमर! उमर के नाम से ही योरोप के कवि समाज का हृदय आनन्द से विह्वल हो उठता है।

× × ×

फारस का यह गुलाब इंगलैंड के क्षेत्र में विकसित होकर भारतवर्ष पहुंचा है। हम भी इस के रूप और गंध पर मुग्ध हैं। उमर की रुबाइयों के दो बंगला अनुवाद मौजूद हैं। गुजराती में भी इसका अनुवाद हुआ है। बीसवीं सदी के स्वर्गीय सम्पादक—श्री हाजी मुहम्मद अलारखिया शिवजी उमर खय्याम के मशहूर प्रेमी थे। हिन्दी में भी उमर खय्याम का अनुवाद हुआ है। भारतवर्ष, प्रवासी, सुधा, माधुरी सरस्वती, आदि पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर उमर खय्याम पर अनेक सुन्दर चित्र भी प्रकाशित हुए हैं। इतने से ही उमर के प्रति हमारी वास्तविक मनोवृत्ति का परिचय मिलता है।

श्रीः

चित्रों के सम्बन्ध में

जिन एक दर्जन चित्रों से उमर खय्याम का यह संस्करण अलंकृत है वे काशी के प्रसिद्ध चित्रकार रामप्रसादजी की कृति हैं।

रामप्रसाद जी का जन्म चित्रकारों के एक प्रसिद्ध और प्राचीन घराने में हुआ है। मुगलों की पड़ती के समय १८वीं शताब्दि के अन्त में कुछ मुगल शाहजादे बनारस में नजरबन्द कर दिये गये थे। वे लोग पूरे ठाट और वैभव से यहाँ आये थे और उनके लवाजमे में कुशल चित्रकार भी थे। उन्हीं लोगों से—संभवतः लालजी मुसव्विर से—इनके पूर्वजों ने दिल्ली कलम (मुगल शैली) की चित्रकला सीखी थी। तब से आज तक यह कुल चित्रकारी करता आ रहा है। रामप्रसाद के पिता श्री० मूलचन्द बड़े उत्कृष्ट मुसव्विर थे और इनके बड़े भाई बटुकप्रसाद भी खासे कारीगर हैं। किन्तु रामप्रसाद की कलम में जो रस और बात है वह उनके कुल में किसी को हासिल न थी, इतना ही नहीं बल्कि मुगल शैली के देश भर में जो २-४ उत्कृष्ट कारीगर बचे हैं उन में श्रेष्ठतम वे ही हैं। हाँ यह बात अवश्य है कि वे बिलकुल पुराने जमाने के आदमी हैं अतएव ख्याति की

लिप्सा और उसके साधन, विज्ञापन का उनमें नितान्ताभाव है, इसी कारण उन्हें देश की कौन कहे कला-प्रेमी समुदाय भी भली भाँति नहीं जानता। किन्तु इससे उनका वह आसन नहीं छिन सकता जो उनकी कृतियाँ उनके लिये सुरक्षित करती हैं।

जब कोई कला रूढ़ियों में जकड़ जाती है, जब उसमें परम्परा का अनुकरण मात्र रह जाता है, 'कैसे' और 'क्यों' पूछने की गुंजाइश और उत्तर देने के साधन नहीं रह जाते तब वह कला न रह कर केवल शिल्प-दस्तकारी – Craftsmanship – मात्र रह जाती है। वही दशा मुगल शैली की चित्रकला की आज से १२५—१५० बरस पहिले हो चुकी थी। "उस्ताद लोग ऐसा करते आये हैं इस लिये हम लोग भी ऐसा करते हैं"—इसके सिवा उन चित्रकारों के पास कोई सफ़ाई किसी हरकत के लिये नहीं रह गई। वे न तो अपने आचार्य्यों की बात को ठीक ठीक अदा कर सकते, न उसका उद्देश्य जानते वा बता सकते। इस प्रकार उस कला के सौन्दर्य के अंग भद्देपन और भोंडेपन में परिवर्तित हो रहे थे। साथ ही वे कारीगर अपने परम्परागत संस्कारों में—जैसा ऐसी अवस्था में सर्वत्र होता है—विन्दु विसर्ग का भी परिवर्तन करने को तैयार न थे। ऐसे वातावरण में यदि किसी कारीगर में कोई मौलिकता हुई भी तो उसकी भी हत्या हो जाती है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में उत्पन्न, पालित और शिक्षित होकर भी रामप्रसाद की प्रतिभा विकसित हुए बिना न रह सकी। इसका कारण यही है कि उनमें सहृदयता और सरसता प्रचुर परिमाण में विद्यमान है; एवं उन्हें दार्शनिक बुद्धि और चक्षु भी—जो मानव-वृत्तियों की पराकाष्ठा एवं परम गूढ़ता होने के कारण कला के सूत्रात्मा हैं,—क्योंकि कला उन्हीं वृत्तियों और गूढ़ताओं को चारु रूप में अभिव्यक्त करती है, प्राप्त हैं।

एक चित्रकारी ही में नहीं, संगीत और साहित्य में भी रामप्रसाद जी की अच्छी प्रवृत्ति और गति है।

मुगल शैली के सिवा पहाड़ी कलम, हिरात की कलम, हाथी-दाँत पर चित्रकारी, रौगनी चित्रकारी, पेन्सिल की ड्राइङ्ग में वे एक रस पटु हैं। शबीह लगाने में भी वे एक ही हैं।

ऐसे कलावन्त ने हमारे इस संस्करण के बारह चित्र अंकित किये हैं जो अपने ढंग के बिलकुल निराले हैं क्योंकि आज कल जिन सैकड़ों चित्रकारों ने उमर ख़य्याम के चित्र बनाये हैं उनमें से अधिकांश दो दृष्टि से, या तो—(१) उसके ऐहिक अथवा शृङ्गारिक तात्पर्य्य की अभिव्यक्ति के लिये, अथवा (२) फ़ारस की सभ्यता की तड़क भड़क दिखाने के लिये; किन्तु इन चित्रों में रामप्रसादजी ने अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप उस कविता की अन्तरात्मा—उसकी दार्शनिकता को अभिव्यक्त किया है।

पहिले ही चित्र को देखिये, उसमें का मधु-याचक फ़क़ीर

"उठो उठो ओ मेरे बच्चो पात्र भरो न विलम्ब करो"

को ऐसी सदा लगाते हुए अंकित किया गया है कि—

"सूख न जावे जीवन-हाला रह जावे खाली प्याला"

की मार्मिक ध्वनि आँखों के सामने खड़ी हो जाती है।

दूसरा चित्र ९वीं और १०वीं रुबाइयों को प्रदर्शित करता है।

"विस्मृत कैकोबाद कैखुसरो" की टोली

क़बरों द्वारा दिखा कर चित्रकार कवि को उसकी प्रेयसी के साथ उस विजन की ओर जाता हुआ अंकित करता है जो और कुछ नहीं, वह परमार्थ का क्षेत्र है जहाँ यह जीवात्मा परमात्मा के आलिङ्गन में एक प्रेयसी की तरह सबको छोड़छाड़ कर नित्यानन्द का उपभोग करने के लिये निधड़क चल पड़ती है। कहना न होगा कि इस जोड़ी को चित्रकार ने ऐहिक वासना से बिलकुल रहित दिखाया है।

इसी प्रकार तीसरे चित्र में उस स्वर्ग-राज्य का दृश्य है जहाँ हम उस मुक्त मिथुन को निरन्तर आनन्द का उपभोग करते देखते हैं—वह सुख इन्द्रिय-जन्य नहीं

है, संगीत साहित्य का विनोद है। आँखों पर उस सुख का जो नशा चित्रकार दिखलाता है वह स्तुत्य है।

१७वीं रुबाई के चित्र में संसार की असारता और परिवर्तनशीलता का अंकन किया है। इस चित्र में चित्रकार की मौलिकता ने बड़ी ऊँची उड़ान ली है। शाही महलों के खंडहर नितान्त उसके कल्पना-प्रसूत हैं और बहुत ही मार्मिक एवं स्वाभाविक हैं।

५वें चित्र में बीसवीं रुबाई का भाव अभिव्यक्त है। इसमें एक खूबी है। यद्यपि कवि अपनी प्रेयसी से कहता है—'अये प्रिये, भर दो यह प्याला, जमने दो तुम इसका रंग' कि 'भूत भविष्य भावना' का भंग हो जाय, किन्तु वह (कवि) स्वयं उसी भावना में निमग्न है, तात्विक बुद्धि से। इसे बड़ी सुन्दरता से रामप्रसाद जी के कौशल ने दरसाया है।

२४वीं रुबाई में जैसा विलक्षण अन्धकार का मीनार कवि ने खड़ा किया है वैसा ही सुन्दर चित्र रामप्रसाद ने भी अंकित किया है—मुअज्जन कैसा गंभीर और शान्त है, चित्र की वर्ण-माला कैसी गूढ़ है।

सातवाँ चित्र २९वीं रुबाई पर है। इसमें जीवन की परवशता दिखाई है कि वह 'विवश वारि' की तरह जाने कहाँ बहता चला जाता है। इस वारिधारा की विशालता, अनादिता और अनन्तता, उसके प्रति-क्षण बहाव और उस बहाव में विवशता का विचार, नौकास्थित व्यक्ति—जिसे हम कवि के हृदय का मूर्त रूप कह सकते हैं—कैसी सुन्दरता से करता दिखाया गया है कि वाह वाह!

३१वें पद्य में जिस ज्योतिश्चक्र का वर्णन है वह बाबुल वालों की कल्पना है और तदनुकूल उन लोकों के स्वरूप निदर्शक फाटकों को चित्रकार ने उसी शैली में अंकित किया है, जो विषयानुकूल अद्भुत कल्पना है। कवि शनि के उच्च सिंहासन तक पहुँच कर भी मृत्यु और नियति की गुत्थियों के सुलझाने में जैसा असमर्थ हो रहा है वह भी खूब दिखाया गया है।

'फानूस-खयाल' से संसार की तुलना ४६वीं रुबाई में की गई है। नवें चित्र का यही विषय है। किन्तु उस फानूस-खयाल से चमत्कार और प्रलोभन किसे होता है—भोले भाले बच्चों को। सो, एक बच्चे के हाथ में उसे दिखा कर रामप्रसाद ने कमाल कर दिया है—बड़ी ही विशद, निर्मल और ऊँची कल्पना है। भारतीय चित्रकला के सर्वश्रेष्ठ पण्डित डा० कुमार स्वामी का कथन है कि इस रुबाई पर इससे अच्छा चित्र उन्होंने नहीं देखा।

१०वें चित्र में जिस दृढ़ता से मृत्यु का स्वागत किया जा रहा है वह सराहनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है।

११वें चित्र में पुराण-पुरुष के रूप में दैव को दिखाया है, रामप्रसाद जी ने। यह बहुत मुनासिब है, किन्तु इतना ही नहीं, उसकी भृकुटी को तो देखिये—एक कैसी लुकी छिपी कुटिलता उस पर खेल रही है; और बेचारी पराधीन आत्मा—रोती हुई स्त्री के रूप में—व्यर्थ अपनी भाग्यरेखा धोने का प्रयास कर रही है। कैसी करुण स्थिति है और कैसा मार्मिक उसका निदर्शन।

१२ वें चित्र में रिन्द की समाधि कैसी भव्य है और उसका वातावरण कैसा शान्त, शीतल और आकर्षक। विश्वासी हठात् वहाँ खिंच ही नहीं आता अपितु उसके प्रभाव से अभिभूत भी हो जाता है। ६८वीं रुबाई का यह चित्रण भी उसी प्रकार आकर्षक है।

हम इन चित्रों की मौलिक कल्पना और उत्तम निर्माण के लिये रामप्रसाद जी को हार्दिक बधाई देते हैं क्योंकि ये आधुनिक भारतीय कला के बड़े सुन्दर आदर्श हैं जिनमें अपनी पुरानी शैली के बन्धन को छोड़ कर रामप्रसाद जी ने बहुत कुछ मौलिकता और नवीनता दिखाई है और जिनसे कितने ही सहृदयों को रस और मनोरंजन की सामग्री प्राप्त होगी॥

काशी — **कृष्णदास**

फाल्गुन शुक्ल ८, १९८७

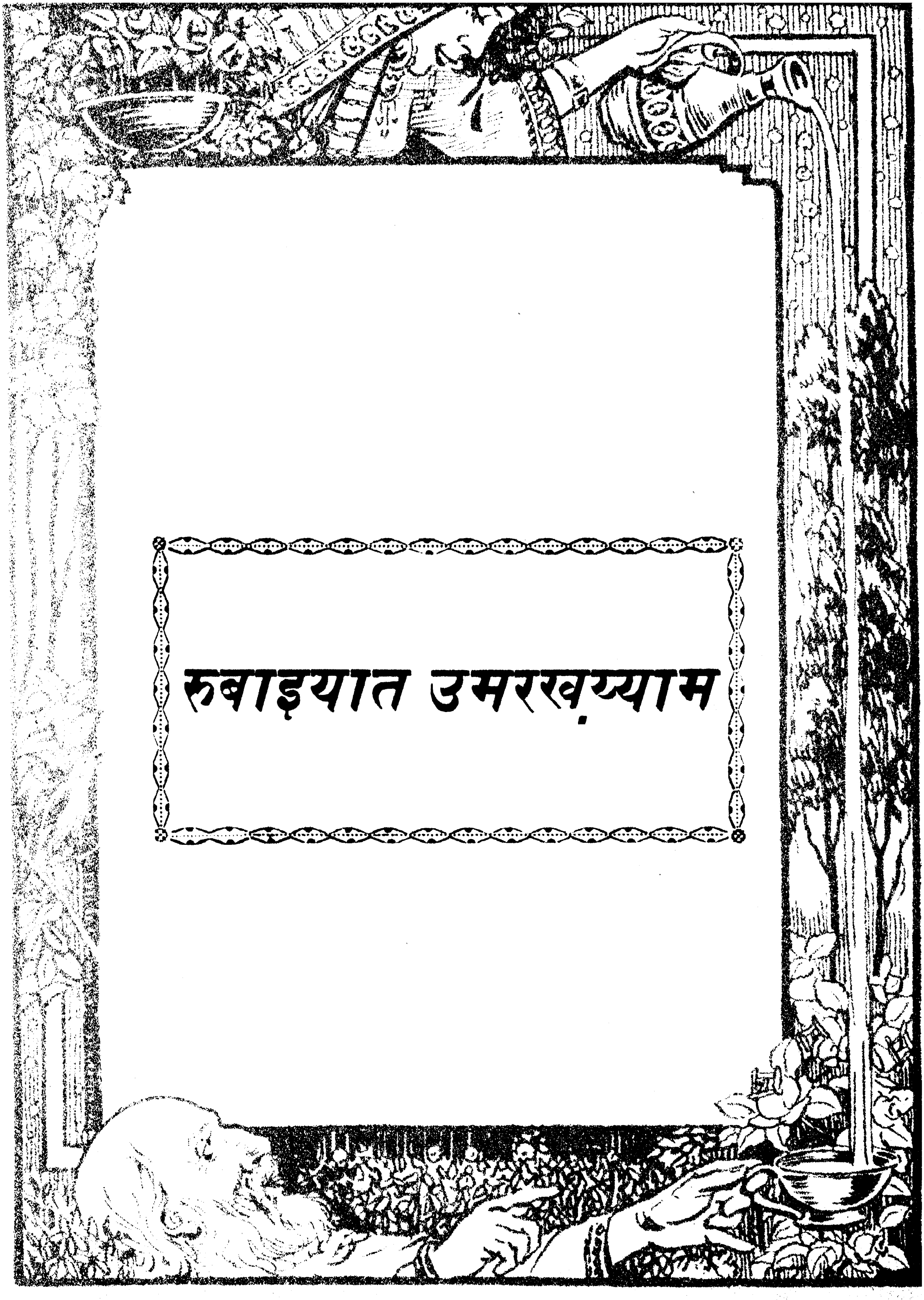

रुबाइयात उमरख़य्याम

मङ्गलाचरण

फैलाई भव ने बहुत, द्वन्द्व-भावना भीम,
किन्तु रहा तू एक ही मेरे राम-रहीम !

—अनुवादक

२४

सुनो, आज के लिए लोग जो सजते हैं कितने ही साज,
बाँधे हैं टकटकी तथा जो आने वाले कल पर आज,
अन्धकार की अटल-लाट से उन्हें मुअज्जन देता बाँग,
'मूर्खो, यहाँ, वहाँ, न कहीं भी होगा सिद्ध तुम्हारा काज।'

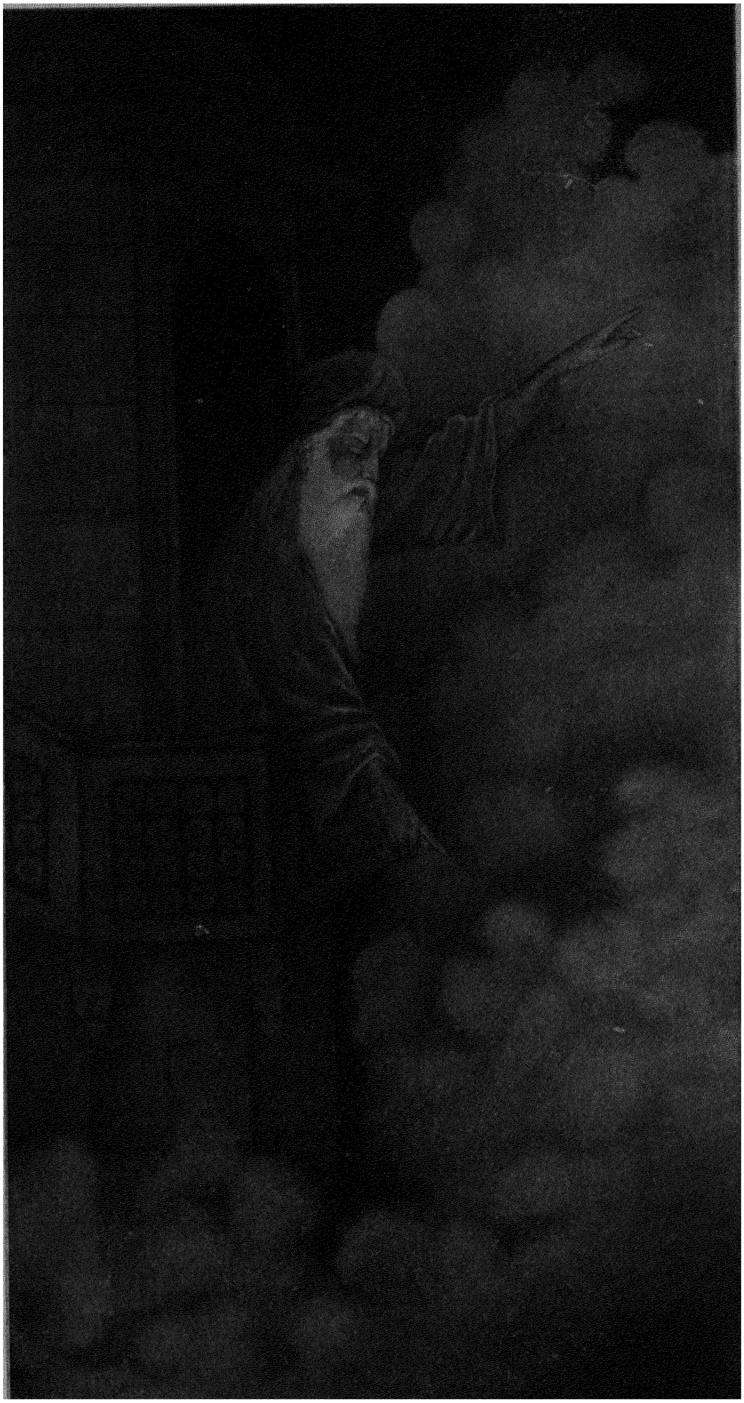

* श्री गणेशायनमः *

रुबाइयात उमरख़य्याम

१

उठो, उषा ने रात्रि-पात्र में अरुण-उपल निक्षेप किया,
ऋक्ष पक्षियों को जिसने है नभः-क्षेत्र से उड़ा दिया।
और पूर्व के जालिक रवि ने वह ऊँचा शाही मीनार
देखो, कोटि कोटि किरणों के फन्दे में है फाँस लिया।

२

क्षाम-कनक-कर ने ऊषा के जब पहला प्रकाश डाला
सुना स्वप्न में मैंने सहसा गूँज उठी यों मधुशाला—
'उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो, पात्र भरो, न विलम्ब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला, रह जावे खाली प्याला।'

३

उच्च कण्ठ से अरुण-चूड़ जब उठकर करने लगा पुकार,
पानागार-सम्मुखस्थित जन बोल उठे—'तो खोलो द्वार।
तुम्हें विदित है, हमें यहाँ है रहना कितनी थोड़ी देर,
एक बार जाकर फिर आना, सम्भव है क्या किसी प्रकार?'

४

हुआ पुरानी इच्छाओं का नये वर्ष के संग विकास;
चिन्ता-शील जीव निर्जन को चला वहाँ करने को वास
जहाँ 'यदे-बैजा' मूसा का निकल रहा है पेड़ों से,
और अवनि-तल से प्रभु ईसा जहाँ ले रहे हैं निःश्वास।

५

कहाँ प्रफुल्ल 'इरम' उपवन वह? कोई नहीं जानता भेद;
कहाँ सात द्वीपों का दर्पण विश्रुत वह 'जामे-जमशेद'?
किन्तु आज भी द्राक्षा-वल्ली वही लाल उपजाती है,
अब भी नीर-तीर पर उपवन मेंट रहा है मन का खेद।

६

मुद्रित-मुख दाऊद पड़ा है चिर-नीरव निस्पन्द निरा,
किन्तु सुनाती बुलबुल अब भी वेणु-विनिन्दित अमर-गिरा
　　और अरुण हो उठते हैं झट पाटल के वे पाण्डु कपोल
सुनकर उसके कलित-कण्ठ से 'मदिरा, मदिरा, मधु मदिरा ।'

७

आओ, मधुर बसन्त विभा में मधु ढालो, भर दो प्याला,
अनुतापों के शिशिर-वसन से बढ़े होलिका की ज्वाला ।
　　समय-विहंगम को थोड़ा ही मार्ग पार करना है अब,
फैला दिये पंख लो, उसने, है वह उड़ने ही वाला ।

८

देखो, लाख लाख फूलों ने आँखें खोलीं दिन के संग,
बिखरे लाखों, मिले धूल में, खोकर गन्ध-रूप-रस-रंग ।
　　ले आया है जो गुलाब को चैत्र मास सो निस्सन्देह
कैकुबाद, जमशेद आदि को ले जाने का है यह ढंग ।

९

विस्मृत कैकुबाद, कैखुसरो, इन सब से अब मुँह मोड़ो ;
सोने दो चाहे जिस करवट, उस रुस्तम को भी छोड़ो ।
भोजनार्थ हातिमताई को लोगों को पुकारने दो ;
चिर-परिचित खय्याम संग तुम आओ निज नाता जोड़ो !

१०

किसी विकीर्ण वनखण्डी को मेरे साथ चलो, आओ,—
मरुस्थली को शस्य-भूमि से जिसे भिन्न करते पाओ ।
जहाँ गुलामों, सुलतानों के नाम नहीं सुन पड़ते हैं,
तुच्छ गिनो सौ महमूदों को, उधर ध्यान भी मत लाओ ।

११

इस तरु तले कहीं खाने को रोटी का टुकड़ा हो एक,
पीने को मधु-पात्र पूर्ण हो, करने को हो काव्य विवेक,
तिस पर इस सन्नाटे में तुम बैठ बगल में गाती हो,
ता नन्दन-सम इसी विजन में मुझे स्वर्ग का हो अभिषेक !

१२

कहते हैं कुछ जन यह—'क्या ही सुख देते हैं पार्थिव भोग!'
समझ रहे हैं कुछ श्रेयस्कर आने वाला स्वर्ग-सुयोग।
अरे, हस्तगत विद्यमान को ले लो और छोड़ दो सब,
अजी, दूर के ढोलों को ही कहते हैं सुहावना लोग!

१३

देखो इस पाटल को, जिसमें रूप, रंग, मधु, गन्ध-तरंग,
'लो!' वह कहता है—'हँस हँसकर खिलता हूँ मैं सहज स-रंग
और उसी क्षण सारे बन्धन निज कौशेय कोष के खोल,
मैं बिखेर देता हूँ अपनी सारी ऋद्धि एक ही संग।'

१४

सांसारिक लिप्साएँ, जिन पर आशा करते हैं हम लोग,
मिट्टी में मिल जाती हैं सब पाकर सौ विघ्नों के रोग।
कहीं फूलती फलती भी हैं तो बस घड़ी दो घड़ी ही,
ज्यों मरु के धूसर मुख पर हो हिमकण की आभा का योग।

१५

वे कि जिन्होंने लाख यत्न कर भारी स्वर्ण-राशि जोड़ी,
और जिन्होंने जलधारा-सी वह सब स्वयं बहा छोड़ी।
बनती नहीं अन्त में ऐसी हेम-धूलि उन दोनों की,
गड़ने पर उखाड़ने को फिर जाय जनों से जो गोड़ी।

१६

यह प्राचीन पथिकशाला है, अहो-रात्र जिसके दो द्वार,
खुलते और बन्द होते हैं बारी बारी बारंबार।
कितनी तड़क भड़क से इसमें आये हैं कितने सम्राट,
एक द्वार से घुसे, घड़ी भर ठहरे, हुए अन्य से पार।

१७

जहाँ शाह जमशेद-विभव था, बही जहाँ मदिरा लहरी,
बने आज उन राजगृहों के सिंह-शृगालादिक प्रहरी।
उस बहरामगोर के सिर पर जो मशहूर शिकारी था,
टाप गोर-खर चला रहा है, पर है नींद वही गहरी!

१८

कुरता नहीं एक भी पाटल वैसी अरुण वर्णता व्यक्त,
जैसी वह, जिसकी जड़ में है किसी गड़े राजा का रक्त।
मैं विचारता हूँ, गुल्लाला, जो फूलों की शोभा है,
गिरा कभी वह किसी सुमुख से उपवनाङ्क में प्रेमासक्त।

१९

इस प्यारे पौधे पर, जिसका लिए सहारा हैं हम लोग,
करते हैं सरिताधर जिसकी कोमल हरियाली का भोग,
हलके हलके टिको ! न जाने, कबके, किन मृदु अधरों से,
हम सबके अनजाने इसने पाया है यह उद्गम-योग।

२०

अये प्रिये, यह प्याला भर दो, जमने दो तुम इसका रंग,
करता है जो वर्त्तमान में भूत-भविष्य-भावना भंग।
आगामी कल की चर्चा क्यों ? आगामी कल तो सहसा
हो सकता हूँ मैं गत कल की सत्तर शताब्दियों के संग।

२१

देखो, जिन पर हृदय हमारे आकर्षित थे अपने आप,
जो थे विधि की और समय की रचना के कल-कीर्ति-कलाप,
पीकर अपने अपने प्याले यहाँ एक दो दौर अहो,
चले गए विश्राम-हेतु हैं एक एक करके चुपचाप।

२२

उड़ा रहे हैं हम इस घर में मौज जिसे वे छोड़ गये,
और बसन्त जिसे सजता है फूल खिला कर नये नये,
निश्चय मही-मंच के नीचे इसे छोड़कर हमको भी,
एक मंच रचने को जाना होगा—किसके लिए, अये!

२३

मिट्टी में मिलने के पहले, और अधिक क्या जाय कहा,
उसे भोग लो, व्यय होने से जो अब भी है शेष रहा।
धूलि धूलि में मिल जावेगी, धूलि तले सोना होगा,
गीत न गायक, सुरा न साकी, और न कोई अवधि रहा!

३१

भूमण्डल के मध्य-भाग से उठकर मैं ऊपर आया,
सातों द्वार पार कर ऊँचा शनिका सिंहासन पाया।
        कितनी ही उलझनें मार्ग में सुलझा डालीं मैंने, किन्तु
मनुज मृत्यु की और नियति की खुली न ग्रन्थिमयी माया।

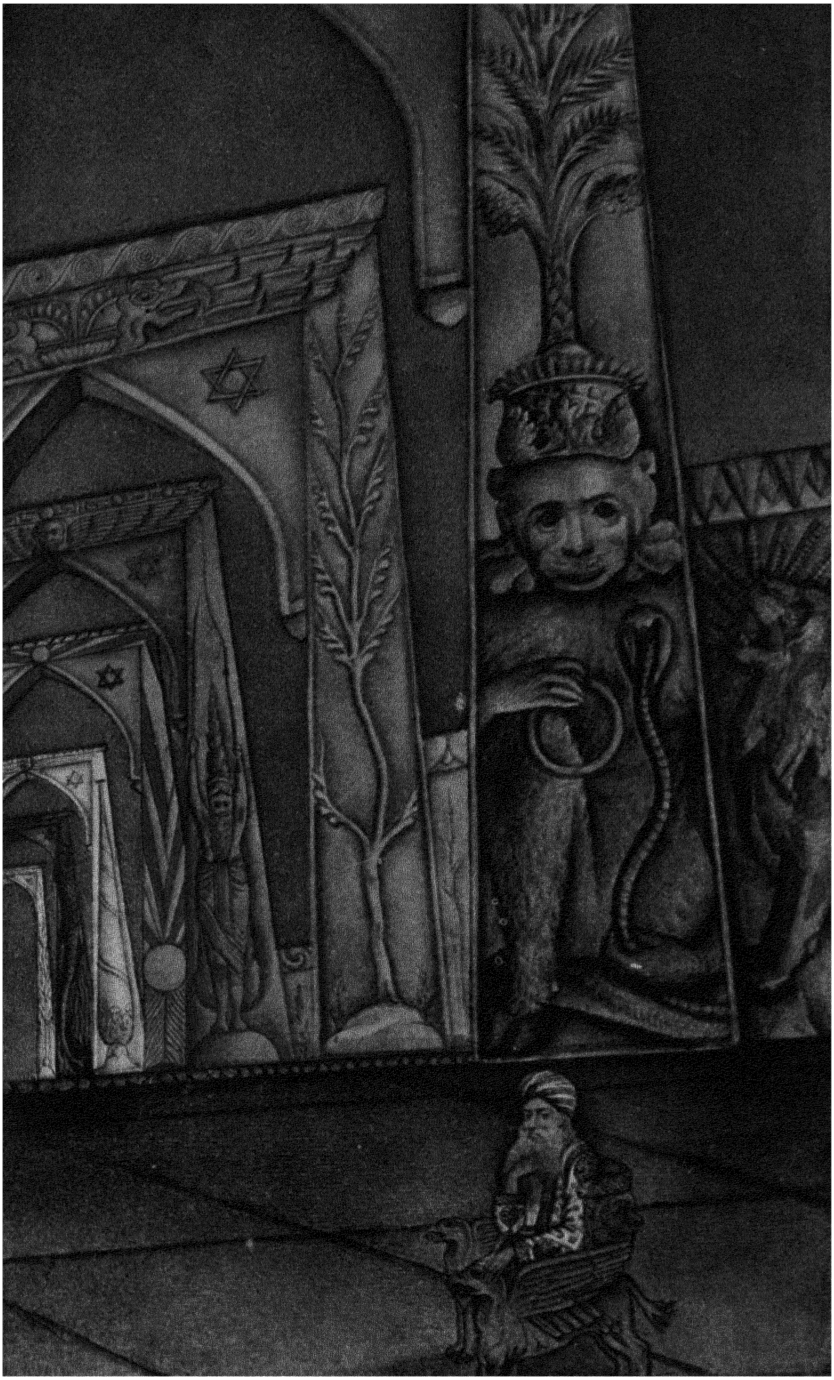

२४

सुनो, आज के लिए लोग जो सजते हैं कितने ही साज,
बाँधे हैं टकटकी तथा जो आने वाले कल पर आज,
अन्धकार की अटल-लाट से उन्हें मुअज्जन देता बाँग—
'मूढ़ो, यहाँ, वहाँ, न कहीं भी होगा सिद्ध तुम्हारा काज।'

२५

करते थे जो यहाँ वहाँ की व्याख्या रात रात भर जाग,
सब धकियाये गये अन्त में, भूल गया सब ज्ञान विराग।
कहाँ गई उनकी वह वाणी, किये गये सब के मुँह बन्द,
भर दी गई धूल उनमें, या भर दी गई धधकती आग।

२६

अरे, चले आओ, विज्ञों को करने दो बकवाद फिजूल,
एक बात निश्चित है, क्षण क्षण उड़ती है जीवन की धूल।
केवल एक बात निश्चित है, शेष और सब मिथ्या है,—
मुरझा जाता है सदैव को, एक बार खिलता जो फूल।

२७

विज्ञों और विरक्त जनों को जहाँ कहीं भी पाता मैं,
यौवन में उत्सुकता पूर्वक उनके सम्मुख जाता मैं।
इसकी, उसकी, सबकी चर्चा उनसे फिर फिर सुनता, किन्तु
जिससे घुसता उसी द्वार से नित्य निकल फिर आता मैं!

२८

उनकी संगति में रह मैंने ज्ञान-बीज बोया भरपूर,
उसे बढ़ाने की चेष्टा में बना रहा मैं चिर दिन चूर,
उससे जो फल पाया मैंने वह था केवल एक यही—
'आया नीर-समान और मैं जाता हूँ समीर-सा दूर।'

२९

यहाँ 'कहाँ से, क्यों ?' न जान कर परवश आना पड़ता है,
वाहित विवश वारि-सा निज को नित्य बहाना पड़ता है।
'कहाँ चले ?' फिर कुछ न जानकर, इच्छा हो कि अनिच्छा हो,
परपट पर सरपट समीर-सा हमको जाना पड़ता है!

३०

पूछे ताछे बिना कहाँ से, आ पहुँचे हो यहाँ अहो,
और कहाँ वे समझे बूझे फिर सहसा चल पड़े कहाँ !
अजब बिलल्लापन है, ठहरो, इसकी याद भुलाने को,
एक चषक, हाँ एक चषक तो पीलो जो निर्द्वन्द्व रहो।

३१

भूमण्डल के मध्य-भाग से उठकर मैं ऊपर आया,
सातों द्वार पार कर ऊँचा शनि का सिंहासन पाया।
कितनी ही उलझनें मार्ग में सुलझा डालीं मैंने, किन्तु
मनुज मृत्यु की और नियति की खुली न ग्रन्थिमयी माया।

३२

एक द्वार था जिसकी कुंजी पा न सका मैं किसी प्रकार,
और एक परदा था मेरी दृष्टि जिसे कर सकी न पार।
तनिक देर तो मेरी तेरी चर्चा होती जान पड़ी,
न तो तू रहा, न मैं रहा फिर, हुआ सभी कुछ शून्याकार।

३३

इस चक्कर में पड़े गगन से पूछा मैंने अविरति से
'नियति चलाती है निदेश कर निज सन्तति को किस गति से?
किस द्युति से पद्धति दिखलाती जो वह ठोकर खाती है?'
उत्तर मिला शून्य से मुझको—'उसी एक अंधी मति से!'

३४

तब मुड़कर मैंने लेने को जीवन-रूप कूप की थाह,
इस प्याले के मधुर अधर से अपना अधर मिलाया—वाह!
बोला वह मृण्मय मर्मर कर-'पीलो, जब तक जीते हो,
नहीं लौटने का जीवन का फिर यह बहता हुआ प्रवाह।

३५

मेरे जान पात्र ने, जिसने उड़ते उत्तर मुझे दिये,
रह कर कभी सजीव लोक में होंगे बहु सुखभोग किये।
उसके जिन हिम-से होंठों से मैंने होंठ मिलाये हैं,
किसको ज्ञात उन्होंने कितने चुम्बन होंगे दिये-लिये।

३६

क्यों कि हाट में धेनु-धूलि के समय एक दिन एक कुम्हार,
गीली मिट्टी कूट रहा था करने को कुछ घट तैयार।
तब मैंने यह देखा, भरसक करके अस्फुट शब्द विशेष—
'धीरे भैय्या, धीरे कृपया!' मिट्टी थी कर रही गुहार।

३७

अरे, चषक भर दो—फिर फिर यह कहने से क्या लाभ भला—
'देखो पैरों के नीचे से खिसक रहा यह समय चला!'
आज मधुर है तो अजात कल, या गत कल के लिए कहो,
झीखें हम क्यों यहाँ बैठकर और सुखाया करें गला!

३८

अतुल असत्ता के परपट पर रक्खे है जो सरपट बेष,
एक निमेष मात्र—जीवन-रस चखने को बस एक निमेष।
डूब उठे नक्षत्र, नास्ति के अरुण-लोक को पथिक चले,
आह, देर क्यों? उठो, शीघ्र ही करो साज-सज्जा निःशेष!

३९

कब तक, किया करोगे कब तक इससे उससे वाद-विवाद ?
कब तक, बना रहेगा कब तक, यह चिर यत्नों का उन्माद ?
मरते हो किस फल के पीछे, वह कटु है या मिथ्या है,
अच्छा तो है यही, छोड़ सब लो उस अंगूरी का स्वाद ।

४०

मित्रो, एक नये परिणय के हेतु, तुम्हें यह है मालूम,
की थी मैंने अपने घर पर राग रंग की कितनी धूम :
बाँझ तर्कना का जब मैंने त्याग कर दिया और सहर्ष
द्राक्षा-दुहिता को निज पत्नी बना लिया उसका मुँह चूम ।

४१

'ऊपर-नीचे' की बातें मैं कह सकता था बिना प्रयास,
क्रम से 'अस्ति-नास्ति' पर बहुविध कर सकता था वचन-विलास ।
तो भी एक—एक ही केवल मुझे जाननी थी जो बात,
वह क्या थी ? मदिरा—बस मदिरा, न था और कुछ गूढ़ाभास ।

४२

मधुशाला के खुले द्वार से अभी अभी गोधूलि समय,
दबी चाल से घड़ा दबाये कोई देवदूत सहृदय
बाहर आया, रस चखने का उसने मुझे निदेश दिया,
और—अरे, बस कुछ मत पूछो, बोलो अंगूरी की जय!

४३

जिन मतमतान्तरों की माया द्वन्द्व-भाव ही सेती है,
न्याय तर्क से उन्हें काटकर जो गुरु-गौरव लेती है।
सूक्ष्म-बुद्धि वाली रसायनी, कौन बड़ी द्राक्षा से, जो
क्षण में जीवन-सीसक-भाजन सोने का कर देती है।

४४

आसव वह सम्राट शूर है, विजयशील बहु बलशाली,
लेकर जो निज अभिमंत्रित असि, झंझावायु-वेग वाली।
भय विषाद की, अविश्वास की, सेना मार भगाता है,
छाई रहती है जो मन पर बन कर घोर घटा काली।

४५

जाने दो उन मतिमानों को, किया करें वे वाद-विवाद,
चलने दो जग का प्रपंच भी, होने दो कोलाहल नाद ।
आओ, बैठ किसी कोने में, जिसने तुम्हें बनाया खेल,
तुम भी उसको खेल बनाकर प्राप्त करो हाँ, मनःप्रसाद ।

४६

भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, इधर उधर,
नहीं और कुछ, यह माया की छाया का है कौतुक भर ।
है 'फ़ानूस-ख़याल' एक यह, दिनकर जिसका दीपक है,
चारों ओर मृषाकारों से काट रहे हैं हम चक्कर ।

४७

जिन होठों का चुम्बन लेते, जिस मधु को करते हो पान,
उसी असत्ता में—जिसमें सब—होते हैं वे अन्तर्धान ।
तो जब तक हो, वही असत् हो,—जो होने को हो, सोचो,
फिर इससे तुम कम क्या होगे, करते हो क्यों मन को म्लान ।

४८

खिलती है सरिता के तट पर जब पाटल-प्रसून माला,
पियो, वृद्ध ख़य्याम संग तब तुम उमंग से गुल्लाला।
उससे भी काली हाला जब कालदूत लेकर आवे,
झिझको मत तब तुम, उसका भी पीलो खुशी खुशी प्याला।

४९

बिछी रात-दिन की बिसात है, जीवों के मुहरे करके,
क्या शतरंज खेलता है विधि, नई नई चाल धरके।
कहीं जिताता, कहीं हराता, कहीं मारता, शह देता,
फिर समेट सब को डिब्बे में धर देता है वह भरके।

५०

दाएँ बाएँ जिधर खिलाड़ी है उछाल देता जब कुछ,
कन्दुक उधर उछल जाता है, हाँ, ना, करता है कब कुछ।
जिसने तुम्हें उछाला है इस प्रान्तर में, किसलिए? इसे,
वही जानता, वही जानता, वही जानता है सब कुछ।

५१

लिखती है, लिखकर बढ़ती ही जाती है उँगली अश्रान्त,
निस्सन्देह तुम्हारे सारे शुद्धाचार विचार नितान्त,
लुभा सकेंगे उसे अर्द्ध भी वाक्य काटने को न कदापि,
एक वर्ण भी धो न सकेंगे लाख लाख आँसू उद्भ्रान्त।

५२

यह उलटा प्याला है, जिसको आसमान कहते हैं हम,
जिसके नीचे मरते-जीते कसे गँसे रहते हैं हम।
है बेकार हाथ फैलाना, किसी लिए इसके आगे,
पड़ा उसी चक्कर में यह भी, विवश जिसे सहते हैं हम।

५३

पृथिवी की पहली मिट्टी से अन्तिम पिण्ड हुआ उत्पन्न,
प्रथम बीज से ही जगती का फलीभूत है अन्तिम अन्न,
और पढ़ेगा, सुनो, न्याय के अन्तिम दिन का मुख जो लेख,
भव के पहले ही प्रभात ने लिख रक्खा है वह प्रच्छन्न।

५४

अम्बर के खरतर तुरंग के कंधे पर वे चढ़े हुए
सुन लो, अपने लक्ष्य-स्थल से जाते थे जब बढ़े हुए।
मेरे जड़-चेतन दोनों के पूर्व नियत क्षेत्र-स्थल में,
डाल दिये ग्रह-चक्र उन्होंने बीज रूप में गढ़े हुए।

५५

द्राक्षा गुण वेष्टित होऊँ, तो वायज़ दिया करे गाली,
निश्चय, मेरी भी कुधातु से बन सकती है वह ताली :
जो उस दिव्य द्वार का ताला खोल सके, जिसके बाहर
भूँक रहा है खड़ा खड़ा वह हत-गति अति अभाग्य शाली।

५६

मेरे मत से तो निश्चय ही ज्वलित सत्य की एक झलक,
करे क्रोध से छार भले ही, या उघार दे प्रेम-पलक।
मैख़ाने में भी अच्छी है उस मसजिद के बदले में,
खो जावे उलटी मोती के पानी सी वह जहाँ ढलक।

५७

ओ, तू ! जिसने मेरे पथ में अथ से इति तक अति ही घोर,
गढ़े और शैतान गढ़े हैं, अड़े खड़े हैं जो सब ओर,
बाँधेगा तो नहीं पकड़ कर; मुझे जकड़ कर भावी से ?
पतन-पाप तो नहीं मढ़ेगा मेरे मत्थे कहीं कठोर ?

५८

ओ, तू ! जिसने की है कुत्सित मिट्टी से मानव की सृष्टि,
रचा अदन के साथ साँप भी, करता है जो विष की वृष्टि,
जिनसे मुँह काला होता है, मनुजों को उन पापों से,
क्षमा-दान कर और प्राप्त कर उनसे स्वयं क्षमा की दृष्टि !

५९

सुनिए, मैं व्रत के अन्तिम दिन वेला थी जब लौट पड़ी,
उसी पुराने कुम्भकार के यहाँ खड़ा था एक घड़ी।
चन्द्रदेव के दर्शन अब भी नहीं हुए थे अम्बर में,
मिट्टी की बहु रचनाएँ थीं मेरे चारों ओर खड़ी !

६०

विस्मय ! वे मृण्मयी मूर्तियाँ फैली थीं जो जहाँ तहाँ,
कुछ तो कह सुन सकती थीं, कुछ कह सुन सकती थीं न वहाँ।
एक अचानक उनमें से, जो कुछ अधीर थी बोल उठी—
'भला कौन तो कुम्भकार है और, कौन है कुम्भ यहाँ ?'

६१

बोल उठा तब पात्र दूसरा—'कहता हूँ मैं निस्सन्देह—
साधारण मिट्टी से यों ही नहीं बनी है मेरी देह।
जिसने इतने सूक्ष्म-भाव से मेरी आकृति रची, भला,
मिल जाने देगा मिट्टी में क्या फिर मुझको वह गुणगेह ?'

६२

कहा तीसरे ने तब—'नटखट अल्पबुद्धि बालक भी एक,
जिसमें उसने पिया प्रीति से, फोड़ेगा वह पात्र न फेक।
फिर क्या वह, जिसने यह भाजन गढ़ा प्रेम-पूर्वक रुचि से,
करके पीछे क्रोध स्वयं ही नष्ट करेगा बिना विवेक ?'

६३

हुए वहाँ सब सन्नाटे में, कोई और न कुछ बोला,
कहने लगा एक भाजन तब भोंड़ी रचना का भोला—
'एक ओर कुछ झुका देखकर मुँह सब मुझे चिढ़ाते हैं,
तो फिर मुझे बनाने में क्या उसका हाथ हिला-डोला?'

६४

कहा अन्य ने—'लोग क्रूर कह देते हैं साक़ी को शाप,
नरक-कालिमा से अङ्कित कर मढ़ते हैं उसके सिर पाप।
कहते हैं हम सब की कोई कठिन परीक्षा होगी,—छिः
वह अच्छा है, और अन्त में अच्छा ही होगा सब आप।'

६५

सनिःश्वास तब कही एक ने वाणी व्यथा-विषाद-मयी—
'बहुत दिनों सुध बिसराने से मेरी मिट्टी सूख गई।
उस चिर-परिचित रस से फिर यदि एक बार मुझको भर दो,
तो यह सम्भव है, क्रम क्रम से मिले स्वस्थता मुझे नई।'

६७

हाँ, मेरे बुझते जीवन को द्राक्षा-रस से दीप्त करो,
और उसी से मृत शरीर को धोकर उसकी धूलि हरो।
 द्राक्षा-दल का कफ़न बना कर उसमें मुझे लपेटो फिर,
और किसी उद्यान-पार्श्व में गर्त्त बना कर गाड़ धरो।

६८

गड़ी-पड़ी मिट्टी भी मेरी आसव-सौरभ का वह जाल,
फैला दे सब ओर सदा को बृहद्वायु-मण्डल में डाल।
 जिससे जाता हुआ उधर से कोई मोमिन बच न सके,
फँस आवे उसके फन्दे में अकस्मात् खिंच कर तत्काल।

६६

यों बातें करने में देखी उदित एक ने इन्दु-कला,
जिसे सभी वे खोज रहे थे, इच्छा फल-सा वहाँ फला।
एक दूसरे को धक्के से इंगित कर बोले—'लो बन्धु,
सुनो बँहगियों की वह मच-मच, आये वाहक लोग भला।'

६७

हाँ, मेरे बुझते-जीवन को द्राक्षा-रस से दीप्त करो,
और उसी से मृत शरीर को धोकर उसकी धूलि हरो।
द्राक्षा-दल का कफ़न बना कर उसमें मुझे लपेटो फिर,
और किसी उद्यान-पार्श्व में गर्त्त बना कर गाड़ धरो।

६८

गड़ी-पड़ी मिट्टी भी मेरी आसव-सौरभ का वह जाल,
फैला दे सब ओर सदा को बृहद्वायु-मण्डल में डाल।
जिससे जाता हुआ उधर से कोई मोमिन बच न सके,
फँस जावे उसके फन्दे में अकस्मात खिंच कर तत्काल।

६९

उन बेवफ़ा बुतों ने जिनको मैंने इतना प्यार किया,
सचमुच लोगों की आँखों में मुझे बहुत ही गिरा दिया।
हाय! एक उथले प्याले में मान डुबाया है मेरा,
एक गीत पर कीर्त्ति बेच दी, प्रेम किया या बैर लिया!

७०

निश्चय, निश्चय, मैंने बहुधा किया प्रथम है पश्चात्ताप,
पर सचेत था शपथ समय मैं? या वह भी था एक प्रलाप?
पाटल के कर में कर डाले इसी समय आ गया वसन्त,
और मुझे पूर्वानुताप पर अब अनुताप आप ही आप!

७१

यद्यपि मेरे साथ मद्य ने धोखा किया, स्वार्थ साधा,
झटका झपट प्रतिष्ठा का पट, देकर बार बार बाधा।
तदपि, सोचता हूँ, कलाल जो वस्तु बेंचते हैं हमको,
उसका विनिमय पाते हैं क्या अर्द्ध मूल्य का भी आधा?

७२

खेद कि, पाटल-संग अचानक ऋतु-पति भी छिप जाय कहीं !
और बन्द सुरभित यौवन का खाता भी हो जाय वहीं !
कौन जानता है, बुलबुल, जो इन डालों पर गाती थी,
कहाँ गई अब और कहाँ से आई थी, है भी कि नहीं !

७३

रच कर प्रिये, कहीं हम दोनों विधि विरुद्ध कोई षड्यंत्र,
उसकी दुःख-पूर्ण रचना पर पा लें विजय-वशीकर मंत्र।
तो टुकड़े टुकड़े कर उसके, जितना सम्भव हो उतना,
क्या फिर उसको बना न लें हम इच्छा के अनुसार स्वतंत्र !

७४

मेरे आनन्देन्दु, अहा ! जो है अक्षीण और अकलंक,
देखो, पूर्ण हो रहा है फिर उदित-चन्द्र से नभ का अंक।
उग उग कर फिर फिर ऐसे ही कितनी बार आज के बाद,
हमें व्यर्थ खोजेगा आकर इस उपवन में यही मयंक !

७५

रखती हुई चरण जब अपना अरुणोज्वल आभा वाला,
उस शाद्वल पर, जहाँ जमी है अतिथि-सभा-ज्यों ग्रह-माला,
मेरे रंग-स्थल पर पहुँचे लिए हुए निज नई उमंग,
तब बस, वहाँ उलट देना तू प्याला—पिया हुआ प्याला !

तमाम शुद

टिप्पणी

पद्य संख्या

२ **ऊषा का वाम कर**—सूर्योदय के समय जो सूर्य की पहिली किरणें निकलती हैं उनको फ़ारसी में ऊषा का बायाँ हाथ कहते हैं। अनुवाद में वाम शब्द का अर्थ सुन्दर भी किया जा सकता है।

४ **जहाँ यदे बैज़ा**—फ़ारस का नवीन वर्ष बसन्त से प्रारम्भ होता है, जब वृक्षों से कोंपल निकलते हैं और पृथ्वी से घास के अंकुर। हज़रत मूसा के हाथ में एक लक्षण था, जिसे यदे बैज़ा कहते हैं : जिससे शुभ्र-प्रभा निकला करती थी ; और ईसामसीह के श्वास से मुर्दे जी उठते थे। कवि ने अंकुर और पवन के लिए क्रमशः ये उत्प्रेक्षायें की हैं।

५ **इरम उपवन**—अरब की धार्मिक कथाओं में वर्णित एक दिव्य उपवन जो नष्ट हो जाने पर भी आज भी पृथ्वी पर अदन के मरुस्थल में है, किन्तु चर्म-चक्षुओं को अगोचर है।

जामे जमशेद—जमशेद का प्याला। जमशेद फ़ारस के पुराणों में वर्णित एक सम्राट है। उसके पास एक प्याला था जिसमें सात चक्कर थे। द्वीप भी सात हैं। कहते हैं, प्रति चक्कर से जमशेद एक द्वीप का हाल जान लिया करता था ; जैसे अपने यहाँ का विश्वदर्पण जिसमें सब विश्व दिखाई पड़ता है।

६ **दाऊद**—मूसाइयों, ईसाइयों और मुहम्मदियों के एक पैग़म्बर जो बहुत ही उत्तम गायक थे।

८ **कैकुबाद**—प्राचीन फ़ारस का एक सम्राट।

जमशेद—देखिये टिप्पणी ५

पद्य संख्या

९ **कैख़ुसरो**—प्राचीन फ़ारस का एक सम्राट।

रुस्तम—प्राचीन फ़ारस का एक विश्वविश्रुत पहलवान।

हातिम ताई—अरब का एक बहुत बड़ा श्रीमान् और परोपकारी एवं उदार आतिथेय। यह मुसलमान धर्म के उदय के पूर्व हुआ था और इसकी अतिथि-सत्कार सम्बन्धी त्याग और महत्ता तथा परोपकार की कितनी ही कथाएं प्रसिद्ध हैं। दास्तान हातिमताई इस प्रकार की कथाओं का एक संकलन है। अतिथि धर्म की महत्ता में इसने कुछ कविता भी की थी।

१० **महमूद ग़ज़नवी**—(९९८-१०३० ई०) इसने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया था जिसमें भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश का एक बहुत बड़ा अंश भी सम्मिलित था। विद्वानों का यह अच्छा आदर सत्कार करता था।

१७ **जमशेद**—देखिए टिप्पणी ५

बहराम गोर—सासानी वंश का फ़ारस का प्रसिद्ध बादशाह (४२०- ४२८ ई०) इसे गोर-ख़र नामक, घोड़े और गधे से मिलते जुलते जंगली पशु के, जिसके बदन पर लंबी लंबी काली धारियां होती हैं और जिसे संस्कृत में गौर-खर तथा अंग्रेजी में 'ज़ेब्रा' कहते हैं, अहेर का बड़ा व्यसन था, इसी कारण गोर पद इसके नाम में जुड़ गया था।

मूल में उमर ख़य्याम ने गोर पद पर श्लेष किया है—जिसका भाव यह है कि बहराम गोर (पशु) को पकड़ा करता था अब गोर (क़ब्र) ने उसे पकड़ रक्खा है।

२४ **मुअज़्ज़िन**—नमाज़ के समय अज़ान (बाँग) देने वाला।

पद्य संख्या

३१ सातों द्वार—यवन खगोल के अनुमार पृथ्वी स्थिर है और उसके चारों ओर सात स्वर्लोक घूम रहे हैं। इनमें प्रत्येक के साथ एक ग्रह संबद्ध है जिसका क्रम यों है, प्रथम स्वर्ग से—चन्द्र, द्वितीय से—मंगल, तृतीय से—बुध, चतुर्थ से—शुक्र, पंचम से—सूर्य, षष्ठ से—बृहस्पति, सप्तम से—शनि। अतः सातवें द्वार से मतलब उस फ़लक हफ़्तम (सप्तम—स्वर्ग) से है शनि जिसका ग्रह है।

३३ चक्कर—मुसलमानों के मत से आसमान घूमा करता है।

४६ फ़ानूस-ख़याल—यह कागद की कंदील है जिसमें कागद के कतरे हुए जीव जन्तु के आकार का चक्करदार फेंटा लगा रहता है। दीप के प्रकाश से उसकी छाया कन्दील की कागदी दीवार पर पड़ती है और जब वह घुमाया जाता है तब वे जीव जन्तु चलते हुए जान पड़ते हैं।

५२ चक्कर—देखो टिप्पणी ३३

५३ न्याय का अन्तिम दिन—मुसलमान धर्म के अनुमार सृष्टि के प्रथम दिन ईश्वर ने सब का भाग्य नियत कर दिया है, तदनुसार सृष्टि के अन्तिम दिन उनका न्याय होगा।

पद्य संख्या

५५ वायज़—धर्मोपदेशक।

५६ मैख़ाना—मदिरा गृह।

५७, ५८ मुसलमानों का सिद्धान्त है कि सृष्टि रचना के साथ ही ईश्वर सब प्राणियों का भाग्य विधान कर देता है और वही पतन-प्रलोभन के हेतु को, एवं अदन (नन्दन-कानन) तथा शैतान (माया, मार) की उत्पत्ति भी करता है।

५९ व्रत—रोज़ा जिसके बाद ईद का चांद देखते हैं।

५९ से ६६ तक की आठ रुबाइयों का नाम 'कूज़ानामा' है।

६४ साक़ी—मद्य पिलाने वाला।

६६ उदित-इन्दुकला—अर्थात् ईद आई। भारवाही हमें ले चलेंगे। हममें शराब भरी जायगी, मज़े होंगे। हम भी सिंच उठेंगे।

६८ मोमिन—पैग़म्बर (हज़रत मुहम्मद) पर ईमान लाने वाला अर्थात मुसलमान।

[illegible]

[illegible] کیا گیا

[illegible] کیا گیا

[illegible] کیا گیا

[illegible]

[illegible] کیا گیا

[illegible]